SAMAYSAAR

श्रीमदाचार्य कुन्दकुन्द विरचित

समयसार

(प्राकृत, संस्कृत, दोहा, हिंदी, इंग्लिश)

दोहा अनुवादक एवं लेखक

हेमन्त लोढा

Samaysaar

Doha Translator & Author – Jain Hemant Lodha

© Copyright All rights reserved
It would be my pleasure to give permission to reproduce or transmit any part of the book, in any form or by any means.

Author
Hemant Lodha
Mobile: 9325536999
Email: lodhah@gmail.com

https://www.facebook.com/lodhah

https://www.linkedin.com/in/hemantclodha/

https://www.instagram.com/hemantlodha/

Published by
Self Published

ISBN: ----------

Not For Sale

समयसार – आत्मा का सार

समयसार आचार्य कुन्दकुन्द की अमर कृति है, जिसमें 415 प्राकृत गाथाओं के माध्यम से आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अद्भुत चित्रण किया गया है। यह ग्रंथ जैन दर्शन के उन शिखर ग्रंथों में से है जिन्हें आत्मज्ञान और मोक्षमार्ग की कुंजी माना गया है। "समय" का अर्थ है आत्मा और "सार" का अर्थ है मूल तत्व। इस प्रकार समयसार का शाब्दिक अर्थ है — आत्मा का परम सार।

इस ग्रंथ में आत्मा के दो दृष्टिकोण स्पष्ट किए गए हैं। निश्चय नय की दृष्टि से आत्मा सदा शुद्ध, स्वतंत्र और कर्मों से परे है। वहीं व्यवहार नय की दृष्टि से आत्मा कर्मों में बंधी हुई प्रतीत होती है और संसार के सुख-दुःख का अनुभव करती है। यही द्वैत हमें यह समझने में मदद करता है कि वास्तविकता में आत्मा सदैव निर्मल है, परंतु अज्ञान और मोह के कारण वह बंधन और दुःख का अनुभव करती है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार में जीव और अजीव, आस्रव और बंध, संवर और निर्जरा, तथा अंततः मोक्ष जैसे गूढ़ तत्वों का विशद विवेचन किया है। उनका संदेश है कि आत्मा की शुद्ध अवस्था को पहचानना ही सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचरण का आधार है, और यही मोक्षमार्ग की ओर ले जाता है।

जैन आचार्यों और विद्वानों ने समयसार को आत्मा का दर्पण कहा है — ऐसा दर्पण जिसमें आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को देख सकती है। यह केवल दार्शनिक ग्रंथ नहीं है, बल्कि जीवन के हर साधक के लिए साधना और जागृति का मार्गदर्शन है। इसमें न केवल सैद्धांतिक ज्ञान है, बल्कि आत्मानुभूति की दिशा भी है।

पाठकों के लिए यह पुस्तक एक आमंत्रण है कि वे आत्मा की गहराइयों में झाँकें, अपने मोह और बंधनों को पहचानें और धीरे-धीरे आत्मा की उस शुद्ध ज्योति की ओर अग्रसर हों जिसे मोक्ष कहा गया है।

Forward by Hemant Lodha

सन् 2019 में समणसुत्तं का दोहा रूपांतरण पूर्ण करने के पश्चात् मैंने समयसार पर कार्य आरंभ किया। परंतु तभी मेरे मित्र और जैन दर्शन के विद्वान श्री दिनेश जी जैन ने सुझाव दिया कि समयसार पर गहराई से कार्य करने से पूर्व मुझे तत्त्वार्थसूत्र तथा अन्य आगमों का अध्ययन व अनुवाद करना चाहिए। उनका कहना था कि समयसार जैन धर्म का परम ग्रंथ है, जिसे परम आगम भी कहा जाता है, और इसे समझने के लिए आधारभूत ग्रंथों का पठन आवश्यक है।

उनकी यह सलाह मेरे लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई। तत्त्वार्थसूत्र और रत्नकरण्ड श्रावकाचार के अनुवाद से मेरी जैन दर्शन की समझ और गहरी हुई। इस बीच मैंने संजीव गोधा जी और विपिन शास्त्री जी के अनेक प्रवचन सुने, जिन्होंने मेरे चिंतन को और समृद्ध किया। इन सबका लाभ मुझे समयसार के अनुवाद में प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुआ।

इस ग्रंथ की प्रस्तुति का स्वरूप सरल और क्रमबद्ध रखा गया है—

- पहले मूल प्राकृत गाथा,
- फिर संस्कृत अनुवाद,
- उसके बाद मेरा दोहा अनुवाद,
- तत्पश्चात् हिन्दी और अंग्रेज़ी अनुवाद (जिसमें इंटरनेट और ChatGPT का सहयोग लिया गया)।

इस संपूर्ण प्रक्रिया में मेरे कई मित्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मैं विशेष रूप से श्री अविनाश जी बागड़े का आभारी हूँ, जिन्होंने दोहों में संशोधन किया, तथा श्री रूपेश झाडे का भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस ग्रंथ के ऑनलाइन एवं प्रिंट प्रकाशन में सहयोग प्रदान किया।

इस पुस्तक को आपके हाथों में सौंपते हुए मैं आशा करता हूँ कि पाठकगण न केवल समयसार के गूढ़ तत्वों से परिचित होंगे, बल्कि आत्मा के परम सार की ओर अपने भीतर झाँकने की प्रेरणा भी पाएँगे।

हेमन्त लोढा, नागपुर, अगस्त २०२५

हेमन्त लोढा – दोहा अनुवादक एवं लेखक

हेमन्त लोढा ने प्राचीन भारतीय शास्त्रों और दार्शनिक ग्रंथों को सहज, लयात्मक और जनप्रिय रूप में प्रस्तुत करने का अनोखा कार्य किया है। उन्होंने समयसार, तत्वार्थसूत्र, भगवतगीता रूपकाविता, चाणक्य नीति, रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदि अनेक ग्रंथों का दोहा छंद में अनुवाद एवं रूपांतरण किया है। यह कार्य केवल भाषांतरण नहीं, बल्कि अर्थ, भाव और काव्यात्मक सौंदर्य का संगम है।

उनकी शैली विद्वता और सरलता का अनूठा मेल है, जिससे जटिल दर्शन भी आम जन तक आसानी से पहुँचता है।

Hemant Lodha – Doha Translator & Author

Hemant Lodha has undertaken the unique task of presenting ancient Indian scriptures and philosophical texts in the lyrical doha metre, making them accessible and appealing to modern readers. He has rendered works like Samaysaar, Tattvarthsutra, Bhagawatgeeta Roopkavita, Chanakya Neeti, and Ratnakarand Shravakachar into poetic couplets. His contribution goes beyond translation – it is a creative transcreation, blending meaning, essence, and poetic beauty. His style combines depth with simplicity, enabling profound philosophy to reach the common reader with ease.

INDEX

Sr. No.	Name	Page No.
Chapter-1	पूर्वरंग Preliminary	1-18
Chapter-2	जीव-अजीव अधिकार - Soul and Non Soul	19-33
Chapter-3	कर्ता-कर्म अधिकार Doer and Karma	34-70
Chapter-4	पुण्य-पाप अधिकार Virtues & Sins	71-79
Chapter-5	आस्रव अधिकार Influx of Karma	80-87
Chapter-6	संवर अधिकार Stoppage of karma	88-92
Chapter-7	निर्जरा अधिकार Karma Shedding	93-114
Chapter-8	बंध अधिकार Section on Bondage	115-135
Chapter-9	मोक्ष अधिकार Section on Liberation	136-145
Chapter-10	सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकार Absolutely Pure Knowledge	146-185

1-पूर्वरंग Preliminary

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं॥१॥

वन्दित्वा सर्वसिद्धान् ध्रुवामचलामनौपम्यां गतिं प्राप्तान्।
वक्ष्यामि समयप्राभृतमिदं अहो श्रुतकेवलिभणितम्॥१॥

ध्रुव, अतुलनीय अचल गति, सिद्ध नमन स्वीकार।
श्रुतकेवली का कहा, बतलाउँ समयसार॥१.१.१॥

ध्रुव, अचल और अनुपम गति को प्राप्त हुए सभी सिद्धों को नमस्कार कर, श्रुतकेवली द्वारा कथित इस समयसार का वर्णन करूँगा।

Bowing to all Siddhas who have attained the steady, immovable, and incomparable state, I shall now narrate the Samaysaar as told by the Shrut Kevalis.

जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं॥२॥

जीव: चरित्रदर्शनज्ञानस्थित: तं हि स्वसमयं जानीहि।
पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितं च तं जानीहि परसमयम्॥२॥

दर्शन ज्ञान चारित्र स्थित, जीव स्व-समय जान।
पुद्गलकर्म प्रदेश स्थित, उसे पर-समय मान॥१.२.२॥

दर्शन, ज्ञान और चारित्र में स्थित जीव को स्व-समय (स्वरूप) जानो। पुद्गल और कर्म के प्रदेशों में स्थित जीव को पर-समय (पर-स्वरूप) जानो।

The soul established in perception, knowledge, and conduct is the true self (swa-samay). The soul bound in matter and karmic associations is the non-self (par-samay).

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।
बंधकहा एवत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥३॥

एकत्वनिसश्चयगत: समय: सर्वत्र सुन्दरो लोके।
बन्धकथैकत्वे तेन विसंवादिनी भवति॥३॥

निश्चय हो एकत्व में, समय वो सुंदर लोक।
कथा बंध के साथ की, रोक सके तो रोक॥१.३.३॥

जो समय एकत्वनिश्चय को प्राप्त है, वह संसार में सर्वत्र सुंदर है। इसलिए एकत्व के साथ बंध की कथा करना विरोधाभासी है।

The soul that remains established in its own true nature is the most beautiful concept in the universe. Hence, any discussion that attempts to bind the soul with matter is contradictory.

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंध कहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥४॥

श्रुतपरिचितानुभूता सर्वस्यापि कामभोगबंधकथा।
एकत्वस्योपलम्भ: केवलं न सुलभो विभक्तस्य॥४॥

परिचय, अनुभव है सुना, बंधन भोग व काम।
सुलभ नहीं है जानना, एकात्म का नाम॥१.४.४॥

काम और भोग से बंधन की कथा सभी ने सुनी, जानी और अनुभव की है, इसलिए वह सुलभ है। परन्तु विभक्त आत्मा का एकत्व अनुभव में नहीं आता, इसलिए वह सहज नहीं है।

The bondage through desires and pleasures is known and experienced by all, hence easily understood. But realizing the oneness of the distinct soul is not easy—it is rarely known or experienced.

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुकेज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥५॥

तमेकत्वविभक्तं दर्शयेऽहमात्मन: स्वविभवेन।
यदि दर्शयेयं प्रमाणं स्खलेयं छलं न गृहीतव्यम्॥५॥

निज अनुभव से मैं कहूँ, एकत्वविभक्त का साथ।
लगे प्रमाण ग्रहण करे, छल नहीं देना हाथ॥१.५.५॥

स्वयं के अनुभव से मैं आत्मा के एकत्व और विभक्त स्वरूप को दिखाता हूँ। यदि इसे प्रमाण स्वरूप लो और चूक हो जाए, तो उसे छल न समझो।

Through my own inner realization, I present the distinct yet unified nature of the soul. If you accept it as a valid insight, do so with reflection—not by mistaking any error as deception.

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥६॥

नापि भवत्यप्रमत्तो न प्रमत्तो ज्ञायकस्तु यो भाव:।
एवं भणन्ति शुद्धं ज्ञातो य: स तु स चैव॥६॥

प्रमत्त व अप्रमत्त नहीं, यह तो ज्ञायक भाव।
शुद्ध ही इसको जानिये, परे पर्याय स्वभाव॥१.६.६॥

जो भाव केवल जानने वाला है, वह न प्रमत्त है, न अप्रमत्त—वह शुद्ध है। जो इस रूप में जाना गया है, वही आत्मा है, दूसरा कुछ नहीं।

The knowing consciousness (gyaayak bhav) is neither negligent nor vigilant; it is pure by nature. What is known as the knower is the soul itself—none other.

ववहारेणोवदीसइ णिण्णस्स चरित्तदंसणणाणं।
णोणाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो॥७॥

व्यवहारेणोपदिश्यते ज्ञानिनश्चरित्रं दर्शनं ज्ञानम्।
नापि ज्ञानं न चरित्रं न दर्शनं ज्ञायकः शुद्धः॥७॥

ज्ञान दर्शन और चरित्र, भेद करे व्यवहार।
आत्मा शुद्ध ज्ञायक है, निश्चय भेद न सार॥१.७.७॥

व्यवहार से ज्ञानी का ज्ञान, दर्शन और चारित्र कहा जाता है परंतु निश्चय से वह न ज्ञान है, न दर्शन, न चारित्र—वह केवल शुद्ध ज्ञायक है।

From the relative standpoint, the enlightened one is described as possessing conduct, perception, and knowledge. But in reality, the soul is not knowledge, perception, or conduct—it is the pure knower.

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं॥८॥

यथा नापि शक्योऽनार्योऽनार्यभाषां विना तु ग्राहयितुम्।
तथा व्यवहारेण विना परमार्थोपदेशनमशक्यम्॥८॥

अनर्थ निज भाषा बिना, पाए समझ न अर्थ।
व्यवहारनय के बिना, संभव न परमअर्थ॥१.८.८॥

जिस प्रकार अनार्य को उसकी भाषा में बोले बिना नहीं समझाया जा सकता, उसी प्रकार परमार्थ को समझाने के लिये व्यवहार का सहारा लिया जाता है।

Just as one cannot explain something to a foreigner without using his language, similarly, it is not possible to explain the ultimate reality (paramartha) without taking the help of conventional or worldly language (vyavahar).

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा॥९॥
जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवलि तम्हा॥१०॥

यो हि श्रुतेनाभिगच्छति आत्मानमिमं तु केवलं शुद्धम्।
तं श्रुतकेवलिनं ऋषयो भणन्ति लोकप्रदीपकाः।
यो श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति श्रुतकेवलिनं तमाहुः जिनाः।
ज्ञानं आत्मा सर्वं यतः श्रुतकेवली तस्मात्॥१०॥

शुद्ध निश्चय श्रुतकेवली, स्वअनुभव श्रुतज्ञान।
व्यवहारिक श्रुतकेवली, द्वादशांग श्रुतज्ञान॥१.१.९–१०॥

जो श्रुतज्ञान द्वारा केवल अपनी शुद्ध आत्मा को अपने अनुभव में लाता है, उसे सर्वज्ञ ने निश्चय श्रुतकेवली कहा, और जो श्रुतज्ञान द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों को जानता है, उसे जिन भगवान द्रव्य श्रुतकेवली कहते हैं।

Those who, through scriptural knowledge (Shrutgyan), realize and experience their pure soul, are called Nishchay-Shrutkevali in the true sense. On the other hand, those who have the complete knowledge of all subjects through study of the scriptures are known as Vyavahar-Shrutkevali.

ववहारोभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो॥११॥

व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थो दर्शितस्तु शुद्धनयः।
भूतार्थमाश्रितः खलु सम्यग्दृष्टिर्भवति जीवः॥११॥

व्यवहारनय सत्य नहीं, सही शुद्ध नय सार।
आश्रय ले भूतार्थ का, सम्यक-दृष्टि विचार॥१.११.११॥

व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है, ऐसा बताया है। जो जीव भूतार्थ का आश्रय लेता है, वह जीव निश्चय से सम्यग्दृष्टि है।

Worldly adapted view (Vyavharnay) is not the ultimate truth, while the pure point of view (Shuddhnay) represents the true essence. The soul that takes refuge in the pure perspective (bhutarth) achieves right perception (Samyakdrishti).

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥१२॥

शुद्धः शुद्धादेशो ज्ञातव्यः परमभावदर्शिभिः।
व्यवहारदेशिताः पुनर्ये त्वपरमे स्थिता भावे॥१२॥

शुद्धनय उपदेश उसे, स्थित है परमभाव।
ज्ञान व्यवहारिक उसे, जबतक अपरमभाव॥१.१.१२॥

परमभाव को जानने वालों के लिए शुद्धनय का उपदेश जानने योग्य है; और जो जीव अपरमभाव में स्थित हैं, उनके लिए व्यवहार द्वारा उपदेश उचित है।

The pure point of view (Shuddhnay) is meant for those who have realized the ultimate truth. For those still rooted in worldly existence (Aparamabhav), the worldly adapted point of view (Vyavharnay) is more appropriate.

भूदत्थेणीभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥१३॥

भूतार्थेनाभिगता जीवाजीवौ च पुण्यपापं च।
आस्रवसंवरनिर्जरा बन्धो मोक्षश्च सम्यक्त्वम्॥१३॥

जीव अजीव पाप पुण्य, संवर आस्रव जान।
मोक्ष निर्जरा बंध भी, नौ तत्त्व का ज्ञान॥१.१.१३॥

भूतार्थनय से ज्ञात जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष, यह नव तत्व सम्यक्त्व हैं।

Knowing the 9 elements from the pure point of view constitutes right perception, right knowledge, and right conduct (Samyaktva). The 9 elements are: Self (Jeev), Non-self (Ajeev), virtue (Punya), sin (Paap), influx (Aasrav), stoppage (Samvar), falling off (Nirjara), bondage (Bandh), and liberation (Moksha).

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि॥१४॥

यः पश्यति आत्मानम् अबद्धस्पृष्टमनन्यकं नियतम्।
अविशेषमसंयुक्तं तं शुद्धनयं विजानीहि॥१४॥

बद्ध-स्पर्श न नियत अनन्य, देखे आत्मा जान।
अविशेष, संयोग रहित, विशुद्धनय पहचान॥१.१४.१४॥

जो नय आत्मा को बन्धरहित, पर के स्पर्श से रहित, अन्यत्व रहित, चलाचलता रहित, विशेष रहित व अन्य के संयोग से रहित है, उसे शुद्धनय जान।

The pure point of view (Shuddhnay) perceives the soul as unbound, untouched by external forces, not distinct from itself, steady, undifferentiated by attributes, and free from any association with others.

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

यः पश्यति आत्मानम् अबद्धस्पृष्टमनन्यमविशेषम्।
अपदेशसान्तमध्यं पश्यति जिनशासनं सर्वम्॥१५॥

अबद्ध-अस्पर्श, अनन्य, नियत, देखे आत्मा जान।
अविशेष, संयोग रहित, जिनशासन पहचान॥१.१५.१५॥

जो यह अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त ऐसे पांच भावस्वरूप आत्मा की अनुभूति करता है, वह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति करता है, क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है।

He who perceives and experiences the soul as free from bondage, untouched by external influences, distinct, not other than itself, undifferentiated, and free from union with external matter, realizes the entire Jaina doctrine. This realization encompasses both the real self and the non-self.

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥१६॥

दर्शनज्ञानचरित्राणि सेवितव्यानि साधुना नित्यम्।
तानि पुनर्जानीहि त्रीण्यप्यात्मानं चैव निश्चयतः॥१६॥

सज्जन सेवन नित्य करे, चरित्र दर्शन ज्ञान।
तीनों एक ही आत्मा, निश्चयनय पहचान॥१.१.१६॥

साधु पुरुष को दर्शन, ज्ञान, और चारित्र सदा सेवन करने योग्य हैं; और उन तीनों को निश्चयनय से एक ही आत्मा के रूप में जानो।

A Jain monk always practices right perception, right knowledge, and right conduct. However, from the pure point of view (Nishchaya Nay), all three are to be understood as the soul itself.

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण॥१७॥
एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण॥१८॥

यथा नाम कोऽपि पुरुषो राजानं ज्ञात्वा श्रद्धधाति।
ततस्तमनुचरति पुनरर्थार्थिक: प्रयत्नेन॥१७॥
एवं हि जीवराजो ज्ञातव्यस्तथैव श्रद्धातव्य:।
अनुचरितव्यश्च पुन: स चैव तु मोक्षकामेन॥१८॥

धन को जो है चाहता, राजा का श्रद्धान।
मुक्ति की जो चाह करे, स्व आत्म पहचान॥१७-१८॥

जैसे कोई धन का अर्थी पुरुष राजा को जानकर श्रद्धा करता है तत्पश्चात उसका प्रयत्नपूर्वक अनुचरण करता है उसी प्रकार मोक्ष के इच्छुक को जीवरूपी राजा को जानना चाहिए, और फिर उसी प्रकार उसका श्रद्धान करना चाहिए और तत्पश्चात उसका अनुकरण भी करना चाहिए।

Just as someone who desires wealth recognizes and reveres the king and then follows him with effort, in the same way, one who longs for liberation should first know the soul, then revere it, and finally strive to follow it.

कम्मेणोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धि अप्पडिबुद्धो हवदि ताव॥१९॥

कर्मणि नोकर्मणि चाहमित्यहकं च कर्म नोकर्म।
यावदेषा खलु बुद्धिरप्रतिबुद्धो भवति तावत्॥१९॥

मैं हूँ कर्म नोकर्म भी, मुझ में ये है जान।
ऐसी बुद्धि जबतक रहे, आत्मा समझ अज्ञान॥१.१९.१९॥

जब तक इस आत्मा की यह बुद्धि बनी रहती है कि "मैं कर्म और नोकर्म हूँ" या "कर्म और नोकर्म मेरे हैं," तब तक वह आत्मा अज्ञान में है।

One remains ignorant as long as one believes "I am karmic or non-karmic matter" or "they are mine," referring to dravya karma, bhaav karma, and nau karma.

अहमेदं एदमहं अहमेदस्स म्हि अत्थि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा॥२०॥
आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहं पि आसि पुव्वं हि।
होहिदि पुणो ममेदं एदस्स अहं पि होस्सामि॥२१॥
एयं तु असब्भूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो॥२२॥

अहमेतदेतदहं अहमेतस्यास्मि अस्ति ममैतत्।
अन्यद्यत्परद्रव्यं सचित्ताचित्तमिश्रं वा॥२०॥
आसीन्मम पूर्वमेतदेतस्याहमप्यासं पूर्वम्।
भविष्यति पुनर्ममैतदेतस्याहमपि भविष्यामि॥२१॥
एतत्त्वसद्भूतमात्मविकल्पं करोति सम्मूढः।
भूतार्थं जानन्न करोति तु तमसम्मूढः॥२२॥

मैं यही, यह है मुझसा, है ऐसा ममत्व भाव।
सचित्त, अचित्त, मिश्र रहे, पर में हो स्वभाव॥१.२०.२०॥
मेरा था व मैं उसका, ऐसा रखता ज्ञान।
होगा मेरा भविष्य में, या मैं उसका जान॥१.२१.२१॥
मान्यता ऐसी जिसकी, अज्ञानी तू जान।
ज्ञानी झूठ विकल्प नहीं, वस्तु स्वरूप सुभान॥१.२२.२२॥

जो व्यक्ति सचित्त, अचित्त या मिश्र परद्रव्य को यह मानता है कि यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह पहले मेरा था, मैं इसका था, यह भविष्य में मेरा होगा, मैं इसका हो जाऊँगा—ऐसा विकल्प करने वाला व्यक्ति अज्ञानी है। जो व्यक्ति भूतार्थ स्वरूप को जानता है, वह ऐसा विकल्प नहीं करता, वह ज्ञानी है।

The one who identifies with external substances—living, non-living, or mixed—and thinks "this is me, this is mine, it was mine, I was its, it will be mine, I will be its," is deluded. The one who knows the true nature (bhutarth) does not entertain such false assumptions and is truly enlightened.

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पोग्गलं दव्वं।
बद्धंबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो॥२३॥

अज्ञानमोहितमतिर्ममेदं भणति पुद्गलं द्रव्यम्।
बद्धमबद्धं च तथा जीवो बहुभावसंयुक्त:॥२३॥

पुद्गलद्रव्य अपना कहे, मोहित मति अज्ञान।
राग द्वेष संग जीव कहे, बद्ध अबद्ध मम् जान॥२३॥

जिसकी मति अज्ञान और मोह से प्रभावित है, और जो राग-द्वेष आदि अनेक भावों से युक्त है, वह जीव कहता है कि यह पुद्गलद्रव्य—चाहे वह बंध हुआ हो या न हो—मेरा है।

One who is deluded by ignorance and moha, and influenced by many emotional states like attachment and aversion, considers both bound (e.g., body) and unbound (e.g., possessions) matter as "mine."

सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
कह सो पोग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं॥२४॥

सर्वज्ञज्ञानदृष्टो जीव: उपयोगलक्षणो नित्यम्।
कथं स पुद्गलद्रव्यीभूत: यद्भणसि ममेदम्॥२४॥

देखना और जानना, नित्य जीव का काम।
निज कैसे? सर्वज्ञ कहे, पुद्गल अपने नाम॥२४॥

आचार्य कहते हैं कि सर्वज्ञ के ज्ञान से देखा गया जीव सदा जानने और देखने (उपयोग) से युक्त होता है, तो वह पुद्गलद्रव्य कैसे हो सकता है जिसे तुम 'मेरा' कहते हो?

Acharya explains that as seen by the Omniscient, the soul is eternally characterized by knowing and perceiving. How then can you claim that matter—something inherently different—is yours?

जदि सो पोग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं।
तो सक्को वत्तुं जे मज्झमिणं पोग्गलं दव्वं॥२५॥

यदि स पुद्गलद्रव्यीभूतो जीवत्वमागतमितरत्।
तच्छक्तो वक्तुं यन्ममेदं पुद्गलं द्रव्यं॥२५॥

यदि तू पुद्गल बन सके, पुद्गल जीव हो जाय।
मेरा पुद्गल, पुद्गल मैं, फिर तो यह कहलाय॥२५॥

यदि जीव पुद्गल बन सके और पुद्गल जीव बन जाए, तभी यह कहना संभव है कि "यह पुद्गल मेरा है" या "मैं यह पुद्गल हूँ।"

If the soul can transform into matter or matter can transform into soul, then—and only then—can one rightly say, "This matter is mine" or "I am this matter."

यदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदि चेव।
सवा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो॥२६॥

यदि जीवो न शरीरं तीर्थकराचार्यसंस्तुतिश्चैव।
सर्वापि भवति मिथ्या तेन तु आत्मा भवति देहः॥२६॥

तीर्थंकर आचार्य स्तुति, मिथ्या होगी जान।
जीव देह जो एक कहे, कहता है अज्ञान॥२६॥

अप्रतिबुद्ध जीव यह कहता है कि यदि आत्मा शरीर नहीं है, तो तीर्थंकर और आचार्य जिनकी स्तुति की जाती है वह सब मिथ्या हो जाती है। इसलिए वह मान लेता है कि आत्मा देह ही है।

The ignorant soul argues that if the soul is not the body, then the worship of Tirthankars and Acharyas becomes false, and thus concludes wrongly that the soul must be the body.

ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदा वि एक्कट्ठो॥२७॥

व्यवहारनयो भाषते जीवो देहश्च भवति खल्वेक:।
न तु निश्चयस्य जीवो देहश्च कदापि एकार्थ:॥२७॥

व्यवहारनय यह कहे, अलग न जीव न देह।
निश्चयनय का मानना, है अलग, नहीं संदेह॥२७॥

व्यवहार नय के अनुसार जीव और शरीर एक माने जाते हैं, परंतु निश्चय नय से देखा जाए तो आत्मा और शरीर कभी भी एक वस्तु नहीं हो सकते।

According to the conventional (vyavahar) viewpoint, soul and body are considered one. However, from the absolute (nishchaya) perspective, soul and body can never be the same substance.

इणमण्णं जीवादो देहं पोग्गलमयं थुणित्तु मुणी।
मण्णगदि हु संथुदो मए केवली भयवं॥२८॥

इदमन्यत् जीवाद्देहं पुद्गलमयं स्तुत्वा मुनि:।
मन्यते खलु संस्तुतो वन्दितो मया केवलि भगवान्॥२८॥

जीव से भिन्न देह की, पूजा करे व्यवहार।
हो गुणों की जब वन्दना, प्रभु वन्दना विचार॥१.२८.२८॥

व्यवहार नय से मुनि जीव से भिन्न पुद्गलमय देह की स्तुति करते हैं और यह मानते हैं कि मैंने केवली भगवान की स्तुति और वंदना की।

From the practical point of view, monks worship the physical body, which is distinct from the soul, and believe that by doing so, they have worshipped the omniscient Lord Kevali.

तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुण हि होंति केवलिणो।
केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि॥२९॥

तनिश्चये न युज्यते न शरीरगुणा हि भवन्ति केवलिनः।
केवलिगुणान् स्तौति यः स तत्त्वं केवलिनं स्तौति॥२९॥

निश्चय से यह योग्य नहीं,ना शरीर भगवान।
प्रभु स्तवन गुण का करे, प्रभु गुणों की खान॥१.२९.२९॥

निश्चय नय के अनुसार यह उपयुक्त नहीं है क्योंकि शरीर के गुण, केवलिज्ञानी भगवान के गुण नहीं होते। जो व्यक्ति केवलि के गुणों की स्तुति करता है, वही वास्तव में केवलि भगवान की स्तुति करता है।

From the absolute standpoint, it is not proper to worship the body, as the attributes of the body do not belong to the omniscient Lord. One who praises the true attributes of the Kevali indeed worships the Kevali in essence.

नगरं ववरणं जहा न अपि रायणो ववरणा होइ।
देहगुणं तह वंणइज्जं न केवलिगुणा वंणिता होन्ति॥ ३०॥

नगरे वर्णिते यथा नापि राज्ञो वर्णना कृता भवति।
देहगुणे स्तूयमाने न केवलिगुणाः स्तुता भवन्ति॥३०॥

बात नगर की जब करे, राजा की ना बात।
देह गुण की जब हो स्तुति, केवली गुण ना बात॥१.१.३०॥

जैसे किसी नगर का वर्णन करने से राजा का वर्णन नहीं होता, वैसे ही जब शरीर के गुणों की स्तुति की जाती है तो उसमें केवली के गुणों की स्तुति नहीं होती।

Just as describing a city does not mean the king has been described, similarly, praising the attributes of the body does not mean the divine attributes of the Omniscient Kevali have been praised.

इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खलु जिंदिदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू॥३१॥

य इन्द्रियाणि जित्वा ज्ञानस्वभावाधिकं जानात्यात्मानम्।
तं खलु जितेन्द्रियं ते भणन्ति ये निश्चिता: साधव:॥३१॥

जीती जिसने इन्द्रियाँ, आत्मा में है ध्यान।
जितेन्द्रिय उसको कहे, निश्चय संत समान॥१.३१.३१॥

जो व्यक्ति इन्द्रियों को जीतकर ज्ञानस्वभाव से आत्मा को अन्य द्रव्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ जानता है, उसे निश्चय नय से जितेन्द्रिय साधु कहा जाता है।

The one who conquers the senses and realizes the soul as supreme through the nature of knowledge, beyond all external substances, is called truly "Jitendriya" (conqueror of senses) by the enlightened ones.

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति॥३२॥

यो मोहं तु जित्वा ज्ञानस्वभावाधिकं जानात्यात्मानम्।
तं जितमोहं साधुं परमार्थविज्ञायका ब्रुवन्ति॥

जीत मोह, स्व समझे, भिन्न है ज्ञान स्वभाव।
परम अर्थ ज्ञानी कहो, साधु जितमोह भाव॥१.३२.३२॥

जो व्यक्ति मोह को जीतकर आत्मा को ज्ञानस्वभाव से भी परे जानता है, उसे परमार्थ को जानने वाले जितमोह साधु कहते हैं।

One who conquers passions (moha) and realizes the soul as beyond even its knowing nature is called "Jitamoh" — a true sage — by those who comprehend the supreme truth (paramarth).

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हवेज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं॥३३॥

जितमोहस्य तु यदा क्षीणो मोहो भवेत् साधोः।
तदा खलु क्षीणमोहो भण्यते स निश्चयविद्भिः॥३३॥

जिसने मोह जीत लिया, क्षीण मोह का भान।
क्षीणमोही उसको कहे, निश्चय नय का ज्ञान॥१.३३.३३॥

जब जिसने मोह पर विजय पा ली है और उसका मोह धीरे-धीरे क्षीण हो रहा है, तो निश्चय नय को जानने वाले उसे क्षीणमोह साधु कहते हैं।

One who has conquered delusion (moha), and in whom it continues to diminish, is called "Ksheenmohi" — one with eradicated passions — by those who perceive through the lens of absolute truth (nishchaya nay).

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परे त्ति णादूणं।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुण्देव्वं॥३४॥

सर्वान् भावान् यस्मात् प्रत्याख्याति परानिति ज्ञात्वा।
तस्मात् प्रत्याख्यानं ज्ञानं नियमात् ज्ञातव्यम्॥३४॥

मेरे सिवाय 'पर' सभी, जानकर प्रत्याखान।
प्रत्याख्यान ही ज्ञान है, नियम यही है जान॥१.३४.३४॥

जब कोई यह जानता है कि मेरे अतिरिक्त सभी भाव पर हैं और उन्हें त्यागता है, तो वह त्याग (प्रत्याख्यान) ही ज्ञान है—ऐसा नियमपूर्वक जानना चाहिए।

When one realizes that all things except the self are alien and renounces them, that very renunciation (pratyakhyan) is to be understood as true knowledge—this is a rule.

जह णाम को वि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं चयदि।
तह सव्वे परभावे णाऊण विममंचदे णाणी॥३५॥

यथा नाम कोऽपि पुरुषः परद्रव्यमिदमिति ज्ञात्वा त्यजति।
तथा सर्वान् परभावान् ज्ञात्वा विमुच्यते ज्ञानी॥३५॥

जैसे कोई त्याग दे, द्रव्य पराया जान।
वैसे ज्ञानी त्यागता, भाव पराया मान॥१.३५.३५॥

जैसे कोई पुरुष किसी वस्तु को पराया जानकर उसका त्याग कर देता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष सभी परभावों को पराया जानकर उनसे विमुक्त हो जाता है।

Just as a person gives up something upon knowing it belongs to someone else, in the same way, the wise renounce all alien feelings upon realizing they are not the self.

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति॥३६॥

नास्ति मम कोऽपि मोहो बुध्यते उपयोग एवाहमेकः।
तं मोहनिर्ममत्वं समयस्य विज्ञायका ब्रुवन्ति॥३६॥

मोहादि मै द्रव्य नहीं, इक मैं अरु उपयोग।
मोह आदि ममता नहीं, स्व-पर भेद में योग॥१.३६.३६॥

जो यह जाने कि मोह आदि द्रव्य मैं नहीं हूँ मैं उपयोग एवं एक हूँ, समय (आत्मा) के स्वरुप को ऐसा जानने वाले व स्व-पर के भेद करने वाले मोहआदि द्रव्य के प्रति निर्ममत्व भाव रखते है।

The one who knows that kasay such as moh etc don't belong to him and I only knows and sees (upayog) and I am one only they keep no attachment with moh etc passions.

णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बेंति॥३७॥

नास्ति मम धर्मादिर्बुध्यते उपयोग एवाहमेकः।
तं धर्मनिर्ममत्वं समयस्य विज्ञायका ब्रुवन्ति॥३७॥

धर्मादि द्रव्य मैं नहीं, इक मैं अरु उपयोग।
धर्मादि से ना ममता, स्व-पर भेद में योग॥१.३७.३७॥

जो जानता है कि धर्म आदि द्रव्य मेरा नहीं है, मैं केवल एक उपयोगस्वरूप आत्मा हूँ—ऐसे ज्ञानी स्व और पर के भेद से धर्म आदि के प्रति निर्ममता रखते हैं।

One who realizes that substances like dharma (medium of motion) are not his and that he is solely the one, indivisible knowing-being (upayog), remains detached from these substances. This detachment is called *dharma-nirmamatva* by those who truly know the soul.

अहमेंक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सयारुवी।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेत्तं पि॥३८॥

अहमेकः खलु शुद्धो दर्शनज्ञानमयः सदाऽरुपी।
नाप्यस्ति मम किञ्चिदप्यन्यत्परमाणुमात्रमपि॥३८॥

सदा एक, निश्चय, विशुद्ध , अरुपी, दर्शन, ज्ञान।
परद्रव्य मेरे नहीं, परमाणु भी अंजान॥१.३८.३८॥

मैं एक हूँ, निश्चय से शुद्ध हूँ, दर्शन और ज्ञानस्वरूप हूँ, सदा अरूपी हूँ, और कोई भी अन्य परद्रव्य—even परमाणु मात्र भी—मेरा नहीं है।

The enlightened Self knows that he is one, surely pure, of the nature of knowledge and perception, eternally formless, and not even the smallest particle of any alien substance belongs to him.

2 जीव-अजीव अधिकार - Soul and Non Soul

अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई।
जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परुवेंति॥३९॥

आत्मानमजानन्तो मूढास्तु परात्मवादिन: केचित्।
जीवमध्यवसानं कर्म च तथा प्ररूपयन्ति॥३९॥

आत्मा को ना जानता, पर में दृढ़ अज्ञान।
कर्म को ही जीव कहे, कभी कह अध्यवसान॥२.१.३९॥

आत्मा को न जानने वाले और पर को आत्मा कहने वाले अज्ञानी, कभी कर्म को और कभी अध्यवसान को जीव कहते हैं।

The one who doesn't know the soul and perceives non-self as true self is ignorant and believes delusional beliefs and karmic matter as true self or soul.

अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमंदाणुभागगं जीवं।
मण्णंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवो त्ति॥४०॥

अपरेऽध्यवसानेषु तीव्रमंदानुभागगं जीवम्।
मन्यन्ते तथाऽपरे नोकर्म चापि जीव इति॥४०॥

तीव्रमंद अनुभाग गत , जीव अज्ञानी राग।
माने कुछ नोकर्म को, जीवन का ही भाग॥२.२.४०॥

अन्य कोई अध्यवसानों में तीव्रमंद अनुभागगत को जीव मानते हैं और कोई नोकर्म को जीव मानते हैं।

Some ignorant believe high or low intensity of passions as true self and some believe quasi karmic matter (Nokarma) to be the soul.

कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभागमिच्छन्ति।
तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो॥४१॥

कर्मण उदयं जीवमपरे कर्मानुभागमिच्छन्ति।
तीव्रत्वमन्दत्वगुणाभ्यां य: स भवति जीव॥४१॥

कर्म उदय को जीव कहे, कोई कर्म अनुभाग।
तीव्र मन्द गुण जीव कहे, भेद कई है राग॥२.३.४१॥

अन्य कोई कर्म के उदय को जीव मानते हैं और कोई तीव्रमंदतारूप गुणों के भेद को जीव मानते हैं।

Some consider the fruition of karma as the soul and some consider the sensation resulting from the strength of the fruition—intense or mild—as the soul.

जीवो कम्मं उहयं दोण्णि वि खलु केइ जीवमिच्छन्ति।
अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति॥४२॥

जीवकर्मोभयं द्वे अपि खलु केचिज्जीवमिच्छन्ति।
अपरे संयोगेन तु कर्मणां जीवमिच्छन्ति॥४२॥

जीव-कर्म संग जीव है, कुछ माने यह योग।
कोई समझे जीव वही, जहाँ कर्म संयोग॥२.४.४२॥

कोई जीव और कर्म दोनों मिले हुओं को जीव मानते हैं और कोई कर्म के संयोग को जीव मानते हैं।

Some believe that soul and karma taken together constitute the soul and some others consider the soul to be the result of the association of karma.

एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वंदति दुम्मेहा।
ते ण परमट्ठवादी णिच्छयवादीहिं णिद्दिट्ठा॥४३॥

एवंविधा बहुविधा: परमात्मानं वदन्ति दुर्मेधस:।
ते न परमार्थवादिन: निश्चयवादिभिर्निर्दिष्टा:॥४३॥

इस प्रकार अनेक तरह, मिथ्या जाने जीव।
परम अर्थ का पता नहीं, कहते निश्चय जीव॥२.५.४३॥

इस प्रकार के तथा अन्य भी अनेक प्रकार के दुर्बुद्धि-मिथ्यादृष्टि जीव पर को आत्मा कहते हैं, उन्हें निश्चयवादियों ने परमार्थवादी नहीं कहा है।

In these and many other ways ignorant people identify the self with the non-self. Such people are not considered true realists by those who follow the ultimate standpoint (nishchaya-naya).

एदे सव्वे भावा पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा।
केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो त्ति वुच्चंति॥४४॥

एते सर्वे भावा: पुद्गलद्रव्यपरिणामनिष्पन्ना:।
केवलिजिनैर्भणिता: कथित ते जीव इत्युच्यन्ते॥४४॥

पूर्व में जो भाव कहे, है पुद्गल परिणाम।
केवलिजिन ने है कहा, कैसे जीव का नाम?॥२.६.४४॥

ये पूर्व कथित सभी भाव पुद्गलद्रव्य के परिणाम से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए केवलिजिनों ने कहा है कि इन्हें "जीव" कैसे कहा जा सकता है?

All the previously mentioned states arise from the transformation of karmic matter. Hence, as stated by the omniscient Lords, how can these be rightly called the soul?

अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पोग्गलमयं जिणा बेंति।
जस्स फलं तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स॥४५॥

अष्टविधमपि च कर्म सर्वं पुद्गलमयं जिना बुवन्ति।
यस्य फलं तदुच्यते दु:खमिति विपच्यमानस्य॥४५॥

जिन कहे पुद्गल सभी, कर्म होत बस आठ।
पके उदय आये कभी, दुख का देते पाठ॥२.७.४५॥

जिनदेव कहते हैं कि आठों प्रकार के सभी कर्म पुद्गलमय हैं। जब वे पक कर उदय में आते हैं, तो वे दु:ख के नाम से जाने जाते हैं।

As pronounced by the Lord, all eight types of karmas are material (pudgalic) in nature. When these karmas come to fruition, they result in suffering.

ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं।
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा॥४६॥

व्यवहारस्य दर्शनमुपदेशो वर्णितो जिनवरै:।
जीवा एते सर्वेऽध्यवसानादयो भावा:॥४६॥

जिन दर्शन उपदेश कहे, वचन है व्यवहार।
भाव अध्यवसानादि है, वो जीव रूप विचार॥२.८.४६॥

जिनेन्द्रदेव ने व्यवहार नय से इन सभी अध्यवसान आदि भावों को ही जीव कहा है।

The Omniscient Lords have described, from the practical standpoint, that all these affective states such as decision (adhyavasāna) etc. are considered as attributes of the soul.

राया हु णिग्गदो त्ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो।
ववहारेण दु उच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया॥४७॥

राजा खलु निर्गत इत्येष बलसमुदयस्यादेश:।
व्यवहारेण तूच्यते तत्रैको निर्गतो राजा॥४७॥

बाहर राजा जब चले, सेना बल समुदाय।
देखो राजा है चला, व्यवहारनु कहलाय॥२.९.४७॥

राजा जब अपनी सेना के साथ निकलता है, तो व्यवहार में पूरे समुदाय के लिए यही कहा जाता है कि "देखो राजा निकला"।

When the king proceeds with his entire army, it is said in common usage that "the king has set out," though he is accompanied by a whole force.

एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्णभावाणं।
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो॥४८॥

एवमेव च व्यवहारोऽध्यवसानाद्यन्यभावानाम्।
जीव इति कृत: सूत्रे तत्रैको निश्चितो जीव:॥४८॥

इसी तरह व्यवहार से, जैसे अध्यवसान।
आदि को भी जीव कहे, जीव तो एक सुजान॥२.१०.४८॥

इसी प्रकार अध्यवसान आदि अन्य भावों को व्यवहार से सूत्रों में जीव कहा गया है, परंतु निश्चय से विचार करने पर जीव तो एक ही होता है।

Just as in worldly usage the king is said to proceed though accompanied by his army, similarly from the practical standpoint, the affective states like decision (adhyavasān) etc. are called soul in scriptures. But from the real standpoint, the soul is one and distinct from all such states.

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं॥४९॥

अरसमरूपमगन्धमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दम्।
जानीहि अलिंगग्रहणं जीवमनिर्दिष्टसंस्थानम्॥४९॥

रस रुप गंध शब्द न व्यक्त, चेतनगुण संचार।
अलिंग-ग्रहण चिन्ह नहीं, निश्चित ना आकार॥२.११.४९॥

जो रसरहित, रूपरहित, गंधरहित, अव्यक्त, चेतना गुणों से युक्त, शब्दरहित, चिन्हरहित, इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होता और जिसका आकार बताया नहीं जा सकता—उसे जीव जानो।

Know the soul as devoid of taste, form, smell, speech, and imperceptible through senses; it possesses the quality of consciousness, has no symbol, cannot be grasped through physical signs, and has no defined structure.

जीवस्व णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो।
ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाणं ण संहणणं॥५०॥

जीवस्य नास्ति वर्णो नापि गंधो नापि रसो नापि च स्पर्शः।
नापि रूपं न शरीरं नापि संस्थानं न संहननम्॥५०॥

वर्ण, गंध, रस भी नहीं, स्पर्श नहीं है जीव।
रूप तन आकार नहीं, भार रहित है जीव॥२.१२.५०॥

जीव के न तो रंग है, न गंध, न स्वाद, न स्पर्श, न रूप है, न शरीर, न कोई आकार है, न ही कोई काया-संरचना।

The pure soul has neither colour, nor smell, nor taste, nor touch, nor visible form, nor body, nor structure, nor any physical constitution.

जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णे पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ॥५१॥

जीवस्य नास्ति रागो न च द्वेषो न विद्यते मोहः।
न कारणं न कर्म न अपकर्म च अपि स्युः न तत्र॥५१॥

राग द्वेष व मोह भी, करे नहीं है जीव।
आस्रव कर्म व नोकर्म भी, करे नहीं है जीव॥२.१३.५१॥

जीव को न राग है, न द्वेष, न मोह है। न आश्रव है, न कर्म है, न नोकर्म है।

The soul is free from attachment, aversion, and delusion. It does not cause the influx of karmic particles, nor does it possess karma or quasi-karmic matter.

जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणाणि॥५२॥

जीवस्य नास्ति वर्गो न वर्गणा नैव स्पर्धकानि कानिचित्।
नो अधियात्मस्थानानि नैव चानुभागस्थानानि॥५२॥

वर्ग, वर्गणा जीव नहीं, ना ही स्पर्धक मान।
अध्यात्म स्थान नहीं, ना अनुभाग स्थान॥२.१४.५२॥

जीव के न तो कोई वर्ग हैं, न वर्गणाएँ हैं, न स्पर्धक हैं, न अध्यात्मस्थान हैं, और न ही अनुभागस्थान हैं।

The soul does not possess any karmic groupings (varga), categories of karmic matter (vargana), karmic aggregates (spardhaka), inner stages of attachment (adhyatmasthana), or karmic intensities (anubhagsthana).

जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई॥५३॥

जीवस्य न सन्ति कानिचिद्योगस्थानानि न बन्धस्थानानि वा।
नैव चौदयस्थानानि न मार्गणास्थानानि कानिचित्॥५३॥

योगस्थानक जा जीव ना, न ही बंधनस्थान।
जीव उदय के स्थान ना, न मार्गणास्थान॥२.१५.५३॥

जीव न तो योगस्थान है, न बंधस्थान है, न उदयस्थान है, और न ही मार्गणास्थान है।

The soul is neither the site of activity (yogsthana), nor of bondage (bandhsthana), nor of fruition (udayasthana), nor does it fall under any of the investigative classifications (marganasthana).

णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिल्सठाणा वा।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा॥५४॥

नो स्थितिबन्धस्थानानि जीवस्य न संक्लेशस्थानानि वा।
नैव विशुद्धिस्थानानि नो संयमलब्धिस्थानानि वा॥५४॥

स्थितिबंधस्थान नहीं, न ही संकलेशस्थान।
जीव विशुद्धिस्थान नहीं, न संयमलब्धिस्थान॥२.१६.५४॥

जीव के स्थितिबंधस्थान भी नहीं, संक्लेशस्थान भी नहीं, विशुद्धिस्थान भी नहीं, और संयमलब्धिस्थान भी नहीं है।

The pure soul does not possess duration-bondage sites (sthitibandh-sthana), sites of emotional disturbances (sanklesh-sthana), purity sites (vishuddhi-sthana), or sites of self-restraint attainment (samyam-labhdhi-sthana).

णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स।
जेण दु एदे सव्वे पोग्गलदव्वस्स परिणामा॥५५॥

नैव च जीवस्थानानि न गुणस्थानानि वा सन्ति जीवस्य।
येन त्वेते सर्वे पुद्गलद्रव्यस्य परिणामा:॥५५॥

आत्मा जीव स्थान नही, ना ही है गुणस्थान।
पुद्गलद्रव्य परिणाम है, जीव न इनको मान॥२.१७.५५॥

जीव के न तो कोई जीवस्थान होते हैं, और न ही गुणस्थान, क्योंकि ये सभी पुद्गलद्रव्य के परिणाम हैं।

The soul has neither classifications (jivsthana) nor spiritual stages (gunasthana), as all these are outcomes of transformations of matter (pudgal dravya).

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स॥५६॥

व्यवहारेण त्वेते जीवस्य भवन्ति वर्णाद्या:।
गुणस्थानान्ता भावा न तु केचिन्नश्चयनयस्य॥५६॥

है वर्ण आदि जीव के, बात करे व्यवहार।
निश्चय से ना जीव के, गुणस्थानादि सार॥२.१८.५६॥

यह वर्ण से लेकर गुणस्थान तक जो भाव कहे गये वे व्यवहारनय से तो जीव के हैं किन्तु निश्चय नय से कोई भी भाव जीव के नहीं हैं।

These attributes—from colour to stages of spiritual development—are associated with the soul from the practical (vyavahar) point of view, but from the absolute (nishchaya) standpoint, none of them truly belong to the soul.

एदेहिं य संबंधो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो।
ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा॥५७॥

एतैश्च सम्बन्धो यथैव क्षीरोदकं ज्ञातव्यः।
न च भवन्ति तस्य तानि तूपयोगगुणाधिको यस्मात्॥५७॥

संबंध वर्ण आदि जीव का, दूध व पानी योग।
आत्मा के ये गुण नही, आत्मा गुण उपयोग॥२.१९.५७॥

इन वर्णादिक भावों के साथ जीव का संबंध दूध और पानी के मिश्रण जैसा केवल एकक्षेत्रावगाह संयोग है, ऐसा जानना चाहिए। वे भाव आत्मा के नहीं हैं क्योंकि आत्मा उनसे उपयोगगुण से अधिक है।

The relation between the soul and attributes like colour etc. is like the mixing of milk and water. These attributes are not of the soul, for the soul surpasses them in possessing the quality of consciousness (upayog).

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई॥५८॥

पथि मुष्यमाणं दृष्ट्वा लोका भणन्ति व्यवहारिणः।
मुष्यते एष पन्था न च पन्था मुष्यते कश्चित्॥५८॥

पथिक लुटे पथ पर किसी, पथ लुटता व्यवहार।
रस्ता तो लुटता नही, राही लुटता पार॥२.२०.५८॥

मार्ग में किसी को लुटते हुए देखकर व्यवहार में लोग कहते हैं कि यह मार्ग लुटता है, परन्तु वास्तव में मार्ग नहीं लुटता, लुटने वाला व्यक्ति ही होता है।

When someone is robbed on the road, people from a practical standpoint say "this road is being robbed." But in reality, the road is not robbed—it is the traveler who is robbed.

तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो॥५९॥

तथा जीवे कर्मणां नोकर्मणां च दृष्ट्वा वर्णम्।
जीवस्यैष वर्णो जिनैव्यर्वहारत उक्त:॥५९॥

वर्ण कर्म नोकर्म लख, जीव वर्ण विचार।
कहते देव जिनेन्द्र है, वर्ण जीव व्यवहार॥२.२१.५९॥

इसी प्रकार जीव में कर्म और नोकर्म के वर्ण को देखकर यह जीव का वर्ण है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने व्यवहार से कहा है।

In the same way, seeing the colour of karma and quasi-karma associated with the soul, Jinendra Bhagwan described it as the colour of the soul from the practical standpoint.

गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति॥६०॥

गंधरसस्पर्शरूपाणि देह: संस्थानादयो ये च।
सर्वे व्यवहारस्य च निश्चयद्रष्टारो व्यपदिशन्ति॥६०॥

रूप गंध रस स्पर्श से,शरीर संग संस्थान।
निश्चयनय कह जीव के, व्यवहारी है मान॥२.२२.६०॥

गंध, रस, स्पर्श, रूप, देह, संस्थान आदि जो जीव में प्रतीत होते हैं वे सब व्यवहार नय से कहे गए हैं, ऐसा निश्चय नय के जानने वाले कहते हैं।

Smell, taste, touch, form, body, and configuration—these are all attributed to the soul only from the practical standpoint, as affirmed by those who perceive the soul from the real (absolute) perspective.

तत्थ भवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी।
संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णादओ केई॥६१॥

तत्र भवे जीवानां संसारस्थानां भवन्ति वर्णादयः।
संसारप्रमुक्तानां न सन्ति खलु वर्णादयः केचित्॥६१॥

वर्णादि भाव जीव के, जीव बसे संसार।
वर्णादि नही जीव के, मुक्त जीव संसार॥२.२३.६१॥

संसार में स्थित जीवों के लिए वर्ण आदि भाव होते हैं, किन्तु जो जीव संसार से मुक्त हो जाते हैं, उनके लिए कोई भी वर्ण आदि भाव नहीं होते।

As long as the soul remains in worldly existence, attributes like colour, etc., exist; but once liberated from the world, such attributes no longer exist in the soul.

जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई॥६२॥

जीवश्चैव ह्येते सर्वे भावा इति मन्यसे यदि हि।
जीवस्याजीवस्य च नास्ति विशेषस्तु ते कश्चित्॥६२॥

यदि तू ऐसा मानता, यही जीव के भाव।
अन्तर फिर रहता नहीं, जीव-अजीव स्वभाव॥२.२४.६२॥

यदि तुम यह मानते हो कि ये सभी भाव जीव ही है, तो फिर जीव और अजीव में कोई अंतर नहीं रह जाएगा।

If you believe that all these states are indeed the soul, then there would be no distinction left between the soul and the non-soul.

अह संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादि।
तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा॥६३॥
एवं पोग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पोग्गलो पत्तो॥६४॥

अथ संसारस्थानां जीवानां तव भवन्ति वर्णादय:।
तस्मात्संसारस्था जीवा रूपित्वमापन्ना:॥६३॥
एवं पुद्गलद्रव्यं जीवस्तथालक्षणेन मूढमते।
निर्वाणमुपगतोऽपि च जीवत्वं पुद्गल: प्राप्त:॥६४॥

यदि वर्ण जीव का भाव है, जीव बसा संसार।
जीव रूप को प्राप्त हुआ, जीव बसा संसार॥२.२५.६३॥

फिर पुद्गलद्रव्य जीव लक्षण, मूर्ख बुद्धि अंजान।
निर्वाण हुआ जब जीव को, पुद्गल जीव सुजान॥२.२६.६४॥

यदि तुम यह मानते हो कि वर्ण आदि संसार में स्थित जीवों के भाव हैं, तो फिर वे जीव रूपवाले हुए। और यदि ऐसा लक्षण ही जीव का है, तो हे मूढ़ बुद्धि! फिर तो पुद्गलद्रव्य भी जीव कहलाएगा। और जब निर्वाण हुआ जीव को, तब पुद्गल भी निर्वाण को प्राप्त हुआ।

If you believe that attributes like colour pertain to worldly souls, then those souls become corporeal. And if such characteristics define the soul, O deluded one, then even matter will be considered soul. Hence, even upon liberation, matter would be called soul and attain liberation, which is absurd.

एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इंदिया जीवा।
बादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स॥६५॥
एदाहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणा उ करणभूदाहिं।
पयडीहिं पोग्गलमइहिं ताहिं कहं भण्णदे जीवो॥६६॥

एकं वा द्वे त्रीणि च चत्वारि च पञ्चेन्द्रियाणि जीवा:।
बादरपर्याप्तेतरा: प्रकृतयो नामकर्मण:॥६५॥
एताभिश्च निर्वृत्तानि जीवस्थानानि करणभूताभि:।
प्रकृतिभि: पुद्गलमयीभिस्ताभि: कथं भण्यते जीव:॥६६॥

एक हो या पाँच इन्द्रियाँ, सूक्ष्म बादर जीव।
पर्याप्त या अपर्याप्त हो, नामकर्म है जीव॥२.२७.६५॥

पुद्गल की ये प्रकृतियाँ, करणरूप है जीव।
कैसे इनको जीव कहे, पुद्गल है, नही जीव॥२.२८.६६॥

एक, दो, तीन, चार या पाँच इन्द्रियों वाले, बादर या सूक्ष्म, पर्याप्त या अपर्याप्त—इन प्रकारों को नामकर्म की पुद्गलमयी प्रकृतियाँ बनाती हैं। इन्हीं पुद्गल प्रकृतियों से उत्पन्न हुए जो जीवस्थान हैं, वे केवल करणरूप हैं। अतः इन्हें आत्मा कैसे कहा जा सकता है?

Living beings with one to five senses—whether gross or subtle, developed or undeveloped—are classifications resulting from physique-making karmas (naam karma). Since these classifications arise from physical karmic matter, which is causal and material, how can they represent the true self or soul?

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव।
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता ॥६७॥

पर्याप्तापर्याप्ता ये सूक्ष्मा बादराश्च ये चैव।
देहस्य जीवसंज्ञा सूत्रे व्यवहारत: उक्ता: ॥६७॥

पर्याप्त या अपर्याप्त हो, सूक्ष्म बादर जीव।
है जीव संज्ञा देह की, व्यवहारनय जीव॥२.२९.६७॥

जो पर्याप्त, अपर्याप्त, सूक्ष्म और बादर जीव कहे गये हैं, वे देह के आधार पर जीव की संज्ञा प्राप्त करते हैं। यह संज्ञा केवल व्यवहार नय से है, न कि निश्चय नय से।

Beings classified as developed or undeveloped, subtle or gross are called Jivas based on their physical body. This designation is only from the practical standpoint, not from the absolute or real point of view.

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा।
ते कह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता॥६८॥

मोहनकर्मण उदयात्तु वर्णितानि यानीमानि गुणस्थानानि।
तानि कथं भवन्ति जीवा यानि नित्यमचेतनान्युक्तानि॥६८॥

कर्म मोहनीय उदय से, वर्ण आदि गुणस्थान।
कैसे इनको जीव कहे, नित्य अचेतन जान॥२.३०.६८॥

ये गुणस्थान मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं। चूँकि ये सदा अचेतन होते हैं, अतः इन्हें जीव नहीं कहा जा सकता।

These stages of spiritual development arise from the fruition of deluding karma. As they are eternally non-conscious, how can they be considered as the soul?

3 कर्ता-कर्म अधिकार Doer and Karma

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हं पि।
अण्णाणी ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो॥६९॥

यावन्न वेत्ति विशेषान्तरं त्वात्मास्रवयोर्द्वयोरपि।
अज्ञानी तावत्स क्रोधादिषु वर्तते जीवः॥६९॥

आस्रव-आत्मा भेद से, जीव रहे अज्ञान।
क्रोध आदि कषाय में, लगा रहे अंजान ॥३.१.६९॥

जीव जब तक आत्मा और आस्रव के लक्षण और भेद को नहीं जानता है, तब तक वह अज्ञानी क्रोध आदि कषायों में प्रवृत्त रहता है।

So long as the soul doesn't recognise the differences between the self and influx of karma (ashrava), it remains ignorant and indulges in emotions like anger, etc.

कोहादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदि।
जीवस्सेवंजट बंधो भणिदो खलु सव्वदरिसीहिं॥७०॥

क्रोधादिषु वर्तमानस्य तस्य कर्मण: सञ्चयो भवति।
जीवस्यैवं बन्धो भणित: खलु सर्वदर्शिभि:॥७०॥

क्रोधादि जब जन करे, कर्म हो संचय जाय।
जीव बंधता कर्म से, सर्वज्ञ देव बतलाय॥३.२.७०

क्रोध आदि में रहने से कर्मों का संचय होता है और उससे जीव का कर्मबंध होता है, ऐसा सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव ने कहा है।

The omniscient declares that indulging in anger etc. leads to accumulation of karmic matter by the soul, resulting in karmic bondage.

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव।
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से॥७१॥

यदानेन जीवेनात्मन: आस्रवाणां च तथैव।
ज्ञातं भवति विशेषान्तरं तु तदा न बन्धस्तस्य ॥७१॥

आत्मा और आस्रव का, अन्तर जाने जीव।
कर्मबंध होता नही, बंधे नही वह जीव॥३.३.७१

जब यह जीव आत्मा और आस्रव का भेद जानता है, तब उसे कर्मबंध नहीं होता।

When the soul understands the distinction between the self and the influx of karmas, no new bondage occurs.

णादूण आसवाणं अलुचित्तं च विवरीयभावं च।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदिं जीवो॥७२॥

ज्ञात्वा आस्रवाणामशुचित्वं च विपरीतभावं च।
दु:खस्य कारणनीति च ततो निवृतिं करोति जीव:॥७२॥

आस्रव नहीं पवित्र है, जीव विपरीत भाव।
दुख कारण आस्रव है, निवृति जीव स्वभाव॥३.४.७२

आस्रव की अशुद्धता, आत्मा से विपरीत भाव और दुख का कारण जानकर जीव उनसे निवृत्त हो जाता है।

Knowing that the influx of karmas is impure, contrary to the nature of the self, and the cause of misery, the soul turns away from them.

अहमेक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।
तम्हि ठिदो तच्चितो सव्वे एदे खयं णेमि॥७३॥

अहमेकः खलु शुद्धः निर्ममतः ज्ञानदर्शनसमग्रः।
तस्मिन् स्थितस्तच्चित्तः सर्वान्तान् क्षयं नयामि॥७३॥

मै विशुद्ध, ममतारहित, पूर्ण दर्शन ज्ञान।
शुद्धआत्मस्वरूप स्थित, कषाय नष्ट पहचान॥३.५.७३

मै निश्चय ही एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममता से रहित हूँ और ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ। जब मैं शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित होता हूँ और उसी में मन लगाता हूँ, तब क्रोधादि समस्त कषायों का नाश करता हूँ।

I am truly one, pure, free from all attachment, and complete with knowledge and perception. By remaining absorbed in the pure self, I destroy all passions like anger and others.

जीवणिबद्धा एदे अधुव अणिच्चा तहा असरणा य।
दुक्खा दुक्खफल त्ति य णादूण णिवत्तदे तेहिं॥७४॥

जीवनिबद्धा एते अध्रुवा अनित्यास्तथा अशरणाश्च।
दुःखानि दुःखफला इति च ज्ञात्वा निवर्तते तेभ्यः॥७४॥

निबद्ध व अध्रुव जीव से, अनित्य अशरण जान।
दुखदायी दुखरूप है, निवृति मे ही ज्ञान॥३.६.७४

ये क्रोधादि आस्रव जीव के साथ बंधे हैं, अध्रुव (स्थिर नहीं), अनित्य और अशरण हैं। ये स्वयं भी दुःख हैं और दुःख रूप फल देने वाले हैं। ज्ञानी यह जानकर इनसे निवृत्त हो जाता है।

These influxes like anger are bonded with the soul, unstable, impermanent, and without refuge. They are suffering in themselves and also lead to suffering. Knowing this, the wise withdraw from them.

कम्मस्स य परणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं।
ण करेइ एयमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी॥७५॥

कर्मणश्च परिणामं नोकर्मणश्च तथैव परिणामम्।
न करोत्येनमात्मा यो जानाति स भवति ज्ञानी॥७५॥

कर्मो के परिणाम हो, या नोकर्म परिणाम।
कर्ता सिर्फ न जानता, ज्ञानी उसका नाम॥३.७.७५

जो आत्मा इस कर्म के परिणाम को तथा नो कर्म के परिणाम को नहीं करता किन्तु जानता है वह ज्ञानी है।

One who merely knows the effects of karma and quasi-karma but does not perform or own them — such a soul is the true knower.

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलकम्मं अणेयविहं॥७६॥

नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये।
ज्ञानी जानन्नपि खलु पुद्गलकर्मानेकविधम्॥७६॥

न परिणमन न ग्रहण करे, न उत्पन्न पर पर्याय।
ज्ञानी जाने निश्चय से, पुद्गलकर्म ना जाय॥३.८.७६

ज्ञानी अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों को जानते हुए भी निश्चय से परद्रव्य की पर्यायों में न परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उनके रूप में उत्पन्न होता है।

The knower, though aware of the various forms of karmic matter, does not transform into, assimilate, or arise in the modifications of non-self substances.

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविहं॥७७॥

नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये।
ज्ञानी जानन्नपि खलु स्वपरिणामानेकविधम्॥७७॥

न परिणमन न ग्रहण करे, न उत्पन्न पर पर्याय।
ज्ञानी जाने निश्चय से, स्व परिणाम बताय॥३.९.७७॥

ज्ञानी अनेक प्रकार के अपने परिणामों को जानते हुए भी निश्चय से परद्रव्य की पर्यायों में न परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उनके रूप में उत्पन्न होता है।

The knower, though aware of his own multiple internal modes, does not transmute into, assimilate, or originate in the states of alien substances.

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलकम्मप्फलमणंतं॥७८॥

नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये।
ज्ञानी जानन्नपि खलु पुद्गलकर्मफलमनन्तम्॥७८॥

न परिणमन न ग्रहण करे, न उत्पन्न पर पर्याय।
ज्ञानी जाने निश्चय से, पुद्गलकर्मफल न पाय॥३.१०.७८॥

ज्ञानी पुद्गल कर्म का फल जो कि अनंत है, जानते हुए भी निश्चय से परद्रव्य की पर्यायों में न परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उस रूप में उत्पन्न होता है।

The knower, though aware of the infinite fruits of karmic matter, does not transmute into, assimilate, or originate in the states of alien substances.

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
पोग्गलदव्वं पि तहा परिणमदि सएहिं भावेहिं॥७९॥

नापि परिणमति न गृह्णात्युत्पद्यते न परद्रव्यपर्याये।
पुद्गलद्रव्यमपि तथा परिणमति स्वकैर्भावैः॥७९॥

न परिणमन न ग्रहण करे, ना उत्पन्न पर्याय।
पुद्गल जब परिणमन करे, निज स्वभाव ही पाय॥३.११.७९॥

इस प्रकार पुद्गल द्रव्य भी परद्रव्य की पर्यायों में न परिणमन करता है, न उन्हें ग्रहण करता है, न उस रूप में उत्पन्न होता है क्योंकि वह अपने ही भावों से परिणमन करता है।

The physical matter too does not transform into, assimilate, or originate in the states of another substance; it only modifies through its own inherent nature.

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति।
पोग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि॥८०॥

जीव परिणामहेतुं कर्मत्वं पुद्गलाः परिणमन्ति।
पुद्गलकर्मनिमित्तं तथैव जीवोऽपि परिणमति॥८०॥

कर्म परिणमित हो पुद्गल, जीव निमित्त परिणाम।
जीव भी परिणमन करे, पुद्गल निमित्त है काम॥३.१२.८०॥

पुद्गल जीव के परिणाम के निमित्त से कर्म रूप में परिणमित होते हैं तथा जीव भी पुद्गल कर्म के निमित्त से परिणमन करता है।

The karmic matter transforms into karma due to the soul's disposition, and the soul also transforms under the influence of karmic matter.

ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि॥८१॥

नापि करोति कर्मगुणान् जीव: कर्म तथैव जीवगुणान्।
अन्योऽन्यनिमित्तेन तु परिणामं जानीहि द्वयोरपि॥८१॥

कर्म न गुण जीव के करे , जीव न कर्म गुण जान।
एक दूजे निमित्त बने, अपनी खुद पहचान॥३.१३.८१॥

जीव कर्म के गुणों को नहीं करता है और कर्म जीव के गुणों को नहीं करता है। दोनों एक-दूसरे के निमित्त से परिणाम करते हैं।

The soul does not create the qualities of karma, nor does karma create the qualities of the soul. Each transforms due to the presence of the other as a condition.

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण।
पोग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं॥८२॥

एतेन कारणेन तु कर्ता आत्मा सकेन भावेन।
पुद्गलकर्मकर्तानां न तु कर्ता सर्वभावानाम्॥८२॥

इस कारण कर्ता बने, आत्मा अपने भाव।
पर आत्मा कर्ता नही, पुद्गल कर्म स्वभाव॥३.१४.८२॥

इस कारण से आत्मा अपने भावों का कर्ता है, लेकिन वह पुद्गल कर्मों से उत्पन्न होने वाले समस्त भावों का कर्ता नहीं है।

For this reason, the soul is the doer of its own states, but it is not the creator of all states arising from karmic matter.

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं॥८३॥

निश्चयनयस्यैवमात्मात्मानमेव हि करोति।
वेदयते पुनस्तं चैव जानीहि आत्मा त्वात्मानम्॥८३॥

निश्चयनय से आत्मा, खुद ही करता जान।
भोगे अपने आप को, ऐसा तू पहचान॥३.१५.८३॥

निश्चयनय के अनुसार आत्मा स्वयं ही अपने कर्मों का कर्ता होता है और फिर वही आत्मा स्वयं को ही भोगता है, ऐसा जानो।

From the real standpoint, the soul itself is the doer of its own actions and also the enjoyer of their fruits – know this.

ववहारस्स दु आदा पोग्गलकम्मं करेदि णेयविहं।
तं चेव पुणो वेयइ पोग्गलकमं अणेयविहं॥८४॥

व्यवहारस्य त्वात्मा पुद्गलकर्म करोति नैकविधम्।
तच्चैव पुनर्वेदयते पुद्गलकर्मानेकविधम्॥८४॥

आत्मा पुद्गलकर्म करे, ये कहता व्यवहार।
भोगे पुद्गलकर्म भी, व्यवहारनय विचार॥३.१६.८४॥

व्यवहारनय का मत है कि आत्मा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों को करता है और उन्हीं अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों को भोगता है।

From the practical point of view, the soul performs various kinds of karmic actions and also experiences the results of those karmas.

जदि पोग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा।
दोकिरियावदिरित्तो पसज्जदे सो जिणावमदं॥८५॥

यदि पुद्गलकर्मेदं करोति तच्चैव वेदयते आत्मा।
द्विक्रियाव्यतिरिक्तः प्रसज्यते स जिनावमतम्॥८५॥

पुद्गलकर्म यदि जीव करे, और उसी का भोग।
दो क्रियाऐं अभिन्न प्रसंग, जिन कहे उल्टा योग॥३.१७.८५॥

यदि आत्मा इस पुद्गल कर्म को करता है और उसी को भोगता है तो दो क्रियाओं से अभिन्न होने का प्रसंग आता है जो कि जिनेन्द्रदेव के मत के विरुद्ध है।

If the soul creates karmic matter and also experiences its results, it leads to the fallacy of one cause producing two distinct actions — a view opposed to the doctrine of the Jinas.

जम्हा दु अत्तभावं पोग्गलभावं च दो वि कुव्वंति।
तेण दु मिच्छादिट्ठी दोकिरियावादिणे हुंति॥८६॥

यस्मात्त्वात्मभावं पुद्गलभावं च द्वावपि कुर्वन्ति।
तेन तु मिथ्यादृष्टयो द्विक्रियावादिनो भवन्ति॥८६॥

दोनों आत्मा ही करे, जीव व पुद्गल भाव।
दो क्रिया इक द्रव्य से, मिथ्यादृष्टि स्वभाव॥३.१८.८६॥

आत्मा के भाव और पुद्गल के भाव दोनों आत्मा करता है - ऐसा मानना यह है कि एक ही द्रव्य दो भिन्न-भिन्न द्रव्यों के परिणाम करता है, और ऐसा मानने वाले मिथ्यादृष्टि होते हैं।

Those who believe that the soul causes both its own modifications and those of karmic matter are believers in a single substance producing two separate sets of modifications — a false doctrine according to Jain philosophy.

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं तहेव अण्णाणं।
अविरदि जोगो मोहो कोहीदीया इमे भावा॥८७॥

मिथ्यात्वं पुनर्द्विविधं जीवोऽजीवस्तथैवाज्ञानम्।
अविरतिर्योगो मोहः क्रोधाद्या इमे भावाः॥८७॥

मिथ्यात्व के दो भेद है, जीव अजीव स्वभाव।
अज्ञान, अविरति योग भी, कषाय दो दो भाव॥३.१९.८७॥

मिथ्यात्व के दो भेद हैं—जीवमिथ्यात्व और अजीवमिथ्यात्व। इसी प्रकार अज्ञान, अविरति, योग, मोह और क्रोधादिक कषाय ये सभी भाव भी जीव और अजीव भेद से दो प्रकार के माने गये हैं।

Wrong belief is of two kinds: one related to soul (Jiva) and the other to non-soul (Ajiva). Likewise, ignorance, non-restraint, activity, delusion, and passions like anger are also of two kinds—related to Jiva and Ajiva.

पोग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं।
उवओगो अण्णाणं अविरदि मिच्छं च जीवो दु॥८८॥

पुद्गलकर्म मिथ्यात्वं योगोऽविरतिरज्ञानमजीवः।
उपयोगोऽज्ञानमविरतिर्मिथ्यात्वं च जीवस्तु॥८८॥

अजीव मिथ्या पुद्गलकर्म, अविरति योग न ज्ञान।
जीव मिथ्या उपयोगकर्ता, अविरति योग न ज्ञान॥३.२०.८८॥

जो मिथ्यात्व, योग, अविरति और अज्ञान अजीव हैं वे पुद्गलकर्म हैं; और जो अज्ञान, अविरति और मिथ्यात्व जीव हैं वे उपयोगकर्ता हैं।

Wrong belief, activities (yoga), non-abstinence, and ignorance that belong to non-soul (Ajiva) are karmic in nature. Whereas ignorance, non-abstinence, and wrong belief that belong to soul (Jiva) are forms of consciousness.

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णादव्वो॥८९॥

उपयोगस्यानादय: परिणामास्त्रयो मोहयुक्तस्य।
मिथ्यात्वमज्ञानमविरतिभावश्च ज्ञातव्य:॥८९॥

जीव मोहयुक्त अनादि से, तीन परिणाम जान।
भाव रहे ये नित सदा, मिथ्या, अविरति योग न ज्ञान॥३.२१.८९॥

अनादिकाल से मोहयुक्त जीव के उपयोग के तीन परिणाम जाने जाते हैं—मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति भाव।

The soul, deluded since beginningless time, manifests in three types of mental states: wrong faith (mithyātva), ignorance (ajñāna), and non-abstinence (avirati).

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥९०॥

एतेषु चोपयोगस्त्रिविध: शुद्धो निरंजनो भाव:।
यं स करोति भावमुपयोगस्तस्य स कर्ता॥९०॥

त्रिविध दूषित जीव हुआ, पर शुद्धनिरंजन भाव।
उसी भाव कर्ता बने , जीव चले जो नाव॥३.२२.९०॥

यद्यपि आत्मा का उपयोग शुद्ध और निरंजन होता है, परन्तु जब वह त्रिविध दोषयुक्त (मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति) होता है, तब वह जिस भाव को करता है, उसी भाव का वह कर्ता होता है।

Although the soul's consciousness is pure and free from blemishes, being tainted by threefold impurities, it becomes the doer of the very disposition it assumes.

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पोग्गलं दव्वं॥९१॥

यं करोति भावमात्मा कर्ता स भवति तस्य भावस्य।
कर्मत्वं परिणमते तस्मिन् स्वयं पुद्गलं द्रव्यम्॥९१॥

जीव जैसे भाव करे, कर्ता बनता भाव।
पुद्गल द्रव्य परिणमन करे, कर्ता कर्म स्वभाव॥३.२३.९१॥

आत्मा जिस भाव को करता है, उसी भाव का वह कर्ता होता है। जब वह भाव करता है, तब पुद्गल द्रव्य स्वयं कर्मरूप में परिणत हो जाता है।

Whatever mode the soul adopts, it becomes the doer of that mode. And thereby, the physical matter spontaneously transforms into karmic matter.

परमप्पाणं कुव्वं अप्पाणं पि य परं करिंतो सो।
अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि॥९२॥

परमात्मानं कुर्वन्नात्मानमपि च परं कुर्वन् सः।
अज्ञानमयो जीवः कर्मणां कारको भवति॥९२॥

'पर' करे पर स्व समझे, स्व में 'पर' का भान।
कर्मों का कर्ता बने, जीव वही अज्ञान॥३.२४.९२॥

जो पर को अपने रूप में मानता है और अपने को पर में देखता है, ऐसा अज्ञानमय जीव कर्मों का कर्ता बनता है।

Considering the non-self as self and the self as non-self, the ignorant soul becomes the doer of karmic actions.

परमप्पाणंकुव्वं अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि॥९३॥

परमात्मानमकुर्वन्नात्मानमपि च परमकुर्वन्।
स ज्ञानमयो जीव: कर्मणामकारको भवति॥९३॥

'पर' में मेरा रूप नहीं, स्व में न पर का वास।
जीव उसे ज्ञानी कहो, कर्ता न बन विश्वास॥३.२५.९३॥

जो पर को अपने रूप में नहीं मानता और अपने को भी पर में नहीं मानता, वह ज्ञानमय जीव कर्मों का कर्ता नहीं होता।

The soul who knows truly does not identify the self with the non-self nor the non-self with the self, and hence does not become the doer of karmic actions.

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि कोहोऽहं।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥९४॥

त्रिविध एष उपयोग आत्मविकल्पं करोति क्रोधोऽहं।
कर्ता तस्योपयोगस्य भवति स आत्मभावस्य॥९४॥

"क्रोध आदि मैं हूँ" समझ, जीव त्रिविध उपयोग।
कर्ता बने उपयोग का, आत्म भाव यह रोग॥३.२६.९४॥

तीन प्रकार (मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति) का यह उपयोग "मैं क्रोध हूँ" ऐसा आत्मविकल्प करता है, इसलिए आत्मा उस उपयोग रूप अपने भाव का कर्ता होता है।

Due to delusion, ignorance, and non-restraint, the soul thinks "I am anger," and thus becomes the doer of that particular mode of consciousness.

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि धम्मादी।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥९५॥

त्रिविध एष उपयोग आत्मविकल्पं करोति धर्मादिकम्।
कर्ता तस्योपयोगस्य भवति स आत्मभावस्य॥९५॥

“धर्म आदि मैं हूँ” समझ, जीव त्रिविध उपयोग।
कर्ता बने उपयोग का, आत्म भाव यह रोग॥३.२७.९५॥

तीन प्रकार (मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति) का यह उपयोग “मैं धर्मास्तिकाय आदि हूँ” ऐसा आत्मविकल्प करता है, इसलिए आत्मा उस उपयोग रूप अपने भाव का कर्ता होता है।

Due to the influence of wrong faith, ignorance and non-restraint, the soul believes “I am dharma etc.” and thus becomes the doer of that mode of consciousness.

एवं पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि मंदबुद्धिओ।
अप्पाणं अवि य परं करेदि अण्णाणभावेण॥९६॥

एवं पराणि द्रव्याणि आत्मानं करोति मंदबुद्धिस्तु।
आत्मानमपि च परं करोति अज्ञानभावेन॥९६॥

पर द्रव्य को स्व समझे, मंदबुद्धि पहचान।
स्व को पर द्रव्य समझे, जीव करे अज्ञान॥३.२८.९६॥

इस प्रकार मंदबुद्धि जीव अज्ञान भाव से पर द्रव्यों को आत्मा मानता है और आत्मा को भी पर द्रव्य के रूप में मानता है।

Thus, the ignorant soul with deluded intellect regards non-self substances as self and the self as non-self.

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहिं परिकहिदो।
एवं खलु जो जाणदि सो मुंचदि सव्वकत्तित्तं॥९७॥

एतेन तु स कर्तात्मा निश्चयविभ्दि: परिकथित:।
एवं खलु यो जानाति सो मुञ्चति सर्वकर्तृत्वम्॥९७॥

निश्चय से कर्ता कहे, यह सब कारण जान।
यह अंतर जो जानता, मुक्त कर्म सब मान॥३.२९.९७॥

पूर्वोक्त कारणों से, निश्चयज्ञानियों द्वारा आत्मा को कर्ता कहा गया है। जो इस भेद को जानता है वह समस्त कर्तृत्व भाव को त्याग देता है।

Because of the aforesaid reasons, the soul is described as doer by the real knowers. But one who truly understands this distinction gives up all sense of doership.

ववहारेण दु आदा करेदि घडपडरधाणि दव्वाणि।
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणी॥९८॥

व्यवहारेण त्वात्मा करोति घटपटरथान् द्रव्याणि।
करणानि च कर्माणि च नोकर्माणीह विविधानि॥९८॥

व्यवहार से जीव करे, घट पट रथ के काम।
इन्द्रियां या कर्म रहे, नोकर्म जीव मुकाम॥३.३०.९८॥

व्यवहारी मानते हैं कि जगत में आत्मा घट पट रथ आदि को, इन्द्रियों को, अनेक प्रकार के क्रोधादि द्रव्य कर्मो को और शारीरादिक नोकर्मो को करता है।

From practical (vyavahar naya) point of view soul is identified as producer of articles such as a pot, a cloth or a chariot besides the sense organs, various type of karmas like anger and the quasi karmic matter (noKarma).

जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज।
जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता॥९९॥

यदि स परद्रव्याणि च कुर्यान्नियमेन तन्मयो भवेत्।
यस्मान्न तन्मयस्तेन स न तेषां भवति कर्ता॥९९॥

यदि आत्मा पर को करे, परद्रव्यमय हो जाय।
पर ऐसा होता नहीं, परकर्ता न हो पाय॥३.३१.९९॥

यदि आत्मा पर द्रव्यों को करता है तो वह नियम से परद्रव्यमय हो जाता, परन्तु ऐसा नहीं होता, इसलिए आत्मा उनका कर्ता नहीं है।

If the soul were to act upon other substances, it would necessarily become one with them. But since it does not, the soul is not the doer of other substances.

जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे।
जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता॥१००॥

जीवो न करोति घटं नैव पटं नैव शेषकानि द्रव्याणि।
योगोपयोगावुत्पादकौ च तयोर्भवति कर्ता॥१००॥

घट पट आदि करे नही, जीव का नही काम।
योग उपयोग जीव के, निमित्त जीव के नाम॥३.३२.१००॥

जीव घट को नहीं करता, पट को नहीं करता और न ही अन्य शेष द्रव्यों को करता है; परन्तु उसके योग और उपयोग इनके उत्पन्न करने के निमित्त होते हैं, इस कारण से वह उनका कर्ता कहलाता है।

The soul does not create pot, cloth or any other external substances, but its activity and manifestation (yoga and upyoga) serve as instrumental causes, hence the soul is said to be their doer.

जे पोग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा।
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी॥१०१॥

ये पुद्गलद्रव्याणां परिणामा भवन्ति ज्ञानावरणानि।
न करोति तान्यात्मा यो जानाति स भवति ज्ञानी॥१०१॥

ज्ञानावरणादि कर्म है, पुद्गलद्रव्य परिणाम।
आत्मा यह करता नहीं, जाने ज्ञानी नाम॥३.३३.१०१॥

ज्ञानावरण आदि जो पुद्गलद्रव्यों के परिणाम होते हैं, उन्हें आत्मा नहीं करता, परन्तु जो आत्मा उन्हें जानता है वही ज्ञानी होता है।

The karmas like knowledge-obscuring are transformations of physical (karmic) matter. The soul does not produce them, but the one who knows them is the true knower.

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा॥१०२॥

यं भावं शुभमशुभं करोत्यात्मा स तस्य खलु कर्ता।
तत्तस्य भवति कर्म स तस्य तु वेदक आत्मा॥१०२॥

शुभ या अशुभ भाव करे, आत्मा करता भाव।
भाव ही उसका कर्म है, भोक्ता आत्म प्रभाव॥३.३४.१०२॥

आत्मा जिस शुभ या अशुभ भाव को करता है उस भाव का वह वास्तव मे कर्ता होता है, वह भाव उसका कर्म होता है और वह आत्मा उस भावरूप कर्म का भोक्ता होता है।

Whatever psychic disposition, virtuous or wicked, the Self engages in, he is definitely the author of the disposition. The disposition becomes his karma and he is the enjoyer of the fruits of this psycho-physical karmic matter (bhâv karma).

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे।
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं॥१०३॥

यो यस्मिन् गुणे द्रव्ये सोऽन्यस्मिंस्तु न संक्रामति द्रव्ये।
सोऽन्यदसंक्रान्त: कथं तत्परिणामयति द्रव्यं॥१०३॥

द्रव्य अपने गुण रहे, मिलती ना 'पर' जान।
अन्य से जब मिलती नहीं, परिणमन क्यों मान॥३.३५.१०३॥

जो द्रव्य जिस गुण में स्थित है वह अन्य द्रव्य में संक्रांति नहीं करता, जब वह अन्य में संक्रांत नहीं होता तो फिर वह अन्य द्रव्य को कैसे परिणमित कर सकता है?

The substance which remains confined to its own qualities and does not transmit into other substances — how can it then cause transformation in another substance?

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पोग्गलमयम्हि कम्मम्हि।
तं उभयमकुव्वंतो तम्हि कहं तस्स सो कत्ता॥१०४॥

द्रव्यगुणस्य चात्मा न करोति पुद्गलमये कर्मणि।
तदुभयमकुर्वंस्तस्मिन्कथं तस्य स कर्ता॥१०४॥

अन्य द्रव्य गुण ना करे, पुद्गल का क्यों काम।
दोनों अपने में रहे, कर्ता का क्यूँ नाम॥३.३६.१०४॥

आत्मा पुद्गलमय कर्म में द्रव्य तथा गुण का निर्माण नहीं करता; जब वह इन दोनों को नहीं करता, तो वह उस कर्म का कर्ता कैसे हो सकता है?

The soul does not create either the matter or the quality of the karmic substance. Since it does not create either, how can it be called the doer of that karmic matter?

जीवम्हि हदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूणपरिणामं।
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमेत्तेण॥१०५॥

जीवे हेतुभूते बन्धस्य तु दृष्ट्वा परिणामम्।
जीवेन कृतं कर्म भण्यते उपचारमात्रेण॥१०५॥

जीव निमित्त बंध लगे, दृष्टिगोचर परिणाम।
जीव ने ही कर्म किया, व्यवहार का काम॥३.३७.१०५॥

जीव के निमित्त बनने पर बंध का परिणाम दृष्टिगोचर होने से “जीव ने कर्म किया” ऐसा केवल व्यवहार से कहा जाता है।

Since soul is the instrumental cause and bondage is seen to follow, it is conventionally said that soul has performed the karma.

जोधेहिं कदे जुद्धे राएण कदं ति जंपदे लोगो।
ववहारेण तह कदं णाणावरणादि जीवेण॥१०६॥

योधै: कृते युद्धे राज्ञा कृतमिति जल्पते लोक:।
व्यवहारेण तथा कृतं ज्ञानावरणादि जीवेन॥१०६॥

योद्धा करते युद्ध है, होता राजा नाम।
कर्म किये है जीव ने, व्यवहार का काम॥३.३८.१०६॥

योद्धाओं द्वारा युद्ध किये जाने पर भी लोक में यह कहा जाता है कि "राजा ने युद्ध किया", वैसे ही व्यवहार से ज्ञानावरण आदि कर्म जीव द्वारा किये गये कहे जाते हैं।

Although the warriors fight the war, people say that the king has fought. In the same way, knowledge-obscuring etc karmas are attributed to the soul from empirical view.

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य।
आदा पोग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्वं॥१०७॥

उत्पादयति करोति च बध्नाति परिणामयति गृह्णाति च।
आत्मा पुद्गलद्रव्यं व्यवहारनयस्य वक्तव्यम्॥१०७॥

उत्पन्न, करता बाँधता, ग्रहण, परिणमित काम।
व्यवहारनय का कथन, आत्मा का हो नाम॥३.३९.१०७॥

व्यवहार नय से यह कहा जाता है कि आत्मा पुद्गल द्रव्य को उत्पन्न करता है, करता है, बांधता है, परिणमित करता है और ग्रहण करता है।

From the empirical point of view, the soul is said to produce, act upon, bind, modify, and receive the physical karmic matter.

That the soul originates, produces, binds, changes the modes, and assimilates the karmic matter is said from the empirical point of view (vyavahâra naya).

जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगो त्ति आलविदो।
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो॥१०८॥

यथा राजा व्यवहारात् दोषगुणोत्पादक इत्यालपितः।
तथा जीवो व्यवहारात् द्रव्यगुणोत्पादक भणितः॥१०८॥

प्रजा के गुण दोष का, राजा ज़िम्मेदार।
हो गुण उत्पन्न पुद्गल के, आत्मा का व्यवहार॥३.४०.१०८॥

जैसे व्यवहार में राजा को प्रजा के दोष और गुणों का उत्पन्न करने वाला कहा जाता है, वैसे ही व्यवहार नय से जीव को पुद्गल द्रव्य के गुणों का उत्पादक कहा गया है।

Just as the king is conventionally regarded as the cause of virtues and vices in his subjects, similarly, from the practical point of view, the soul is said to be the producer of the substance and qualities of physical matter.

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा॥१०९॥
तेसि पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो।
मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं॥११०॥
एदे अचेदणा खलु पोग्गलकम्मुदयसंभवा जम्हा।
ते जदि करेंति कम्मं ण वि तेसिं वेदगो आदा॥१११॥
गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जम्हा।
तम्हा जीवोऽकत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि॥११२॥

सामान्यप्रत्यया: खलु चत्वारो भण्यन्ते बन्धकर्तार:।
मिथ्यात्वमविरणं कषाययोगौ च बोद्धव्या:॥१०९॥
तेषां पुनरपि चायं भणितो भेदस्तु त्रयोदशविकल्प:।
मिथ्यादृष्ट्यादि: यावत् सयोगिनश्चरमान्त:॥११०॥
एते अचेतना: खलु पुद्गलकर्मोदयसम्भवा यस्मात्।
ते यदि कुर्वन्ति कर्म नापि तेषां वेदक आत्मा॥१११॥
गुणसंज्ञितास्तु एते कर्म कुर्वन्ति प्रत्यया यस्मात्।
तस्माज्जीवोऽकर्ता गुणाश्च कुर्वन्ति कर्माणि॥११२॥

बंध कर्ता सामान्य से, निश्चय कहता चार।
मिथ्यात्व व अविरति भी, योग कषाय विचार॥३.४१.१०९॥

भेदरुप इनका करते, कर्ता तेरह जान।
मिथ्यात्व-सयोगकेवली, है तेरह गुणस्थान॥३.४२.११०॥

है अचेतन निश्चय से, पुद्गल कर्म गुणस्थान।
कर्म वे भले ही करे, जीव न भोक्ता जान॥३.४३.१११॥

कर्म है करते इस तरह, कर्म के गुणस्थान।
कर्म अकर्ता जीव है, गुण को कर्ता जान॥३.४४.११२॥

निश्चय से बंध के कर्ता चार सामान्य प्रत्यय कहे जाते है। मिथ्यात्व, अविरमण, कषाय और योग जानना। और फिर उनका १३ प्रकार आदि का भेद कहा गया है। मिथ्यात्व गुणस्थान से सयोगकेवली के चरम समय पर्यन्त तक। ये प्रत्यय अथवा गुणस्थान अचेतन है क्योकि पुद्गलद्रव्य कर्म के उदय से उत्पन्न होते है। यदि कर्म करते हैं तो करे उनका भोक्ता आत्मा नहीं है। क्योंकि ये गुण नामक प्रत्यय कर्म करते है तो जीव कर्मों का कर्ता कैसे हुआ? गुण ही कर्मों के कर्ता है।

In reality, four primary conditions of influx of karmas are said to be the causal agents bringing about karmic bondage. These must be understood to be wrong belief (mithyâtva), non- abstinence (avirati), gross passions (kaoâya),

and actions of the body, the organ of speech and the mind (yoga). These have been further subdivided into thirteen secondary conditions. The thirteen conditions exist, to different extent, in various stages of spiritual development (guòasthâna), from 'misbeliever' (mithyâdrioti) to 'omniscience with vibration' (sayogakevali).

These conditions of influx of karmas resulting into bondages, like wrong belief etc., are, in reality, non-conscious (achetana) because they are brought about by the rise of the karmic matter. If these result into karmas, then the Self cannot be the enjoyer of the fruits thereof. Because the conditions called guòasthâna produce karmas, therefore, from the pure point of view, the Self is not the producer of karmas, and only the conditions called guòasthâna produce karmas.

यह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो।
जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं॥११३॥
एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाऽजीवो।
अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं॥११४॥
अह दे अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा।
जह कोहो तह पच्चय कम्मं णोकम्ममवि अण्णं॥११५॥

यथा जीवस्यानन्य उपयोग: क्रोधोऽपि तथा यद्यनन्य:।
जीवस्याजीवस्य चैवमनन्यत्वमापन्नम्॥११३॥
एवमिह यस्तु जीव: स चैव तु नियमतस्तथाऽजीव:।
अयमेकत्वे दोष: प्रत्ययनोकर्मकर्मणाम्॥११४॥
अथ ते अन्य: क्रोधोऽन्य: उपयोगात्मको भवति चेतयिता।
यथा क्रोधस्तथा प्रत्यया: कर्म नोकर्माप्यन्यत्॥११५॥

जीव-उपयोग अभिन्न है, क्रोध-जीव अनन्य।
जीव-अजीव हो एकरूप, दोषपूर्ण हो जीव॥३.४५.११३॥

इस तरह तो जीव भी, हो नियम से अजीव।
प्रत्यय कर्म नोकर्म भी, एकरूप होवे जीव॥३.४६.११४॥

जैसे क्रोध अन्य है, अन्य भी है उपयोग।
प्रत्यय कर्म नोकर्म भी, अन्य जीव ना योग॥३.४७.११५॥

जैसे जीव के उपयोग अनन्य अर्थात् एकरूप है उसी प्रकार क्रोधादि भी अनन्य हो तो जीव के और अजीव के अनन्यत्व आ गया। और ऐसा होने पर इस जगत मे जो जीव है वही नियम से उसी प्रकार अजीव सिद्ध हुआ (दोनो के अनन्यत्व होने से यह दोष आया। प्रत्यय, नोकर्म और कर्म के एकत्व अर्थात् अनन्यत्व मे भी यही दोष आता है।अब यदि तेरे मत मे क्रोध अन्य है और उपयोगस्वरुप आत्मा अन्य है तो जैसे क्रोध वैसे ही प्रत्यय, कर्म और नोकर्म भी आत्मा से अन्य ही है।

Knowledge- and perception-consciousness is inseparable from the Self; however, if we consider anger too as inseparable from the Self, then soul and non-soul will get amalgamated into one entity. This hypothesis will entail that all souls in this world will surely become non-soul too. Same misleading notion prevails if we consider karmic conditions, karmic matter, and quasi-karmic matter to be inseparable from the Self. Therefore, to dispel this misleading notion, as we regard anger to be distinct from the conscious Self, similarly, regard karmic conditions, karmic matter, and quasi-karmic matter also to be distinct from the conscious Self.

जीवे ण सयं बद्धं ण सयं परिणमदि कम्मभावेण।
जदि पोग्गलदव्वमिणं अप्परिणामी तदा होदि॥११६॥
कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमंतीसु कम्मभावेण।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा॥११७॥
जीवो परिणामयदे पोग्गलदव्वाणि कम्मभावेण।
ते सयमपरिणमंते कहं णु परिणामयदि चेदा ॥११८॥
अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पोग्गलं दव्वं।
जीवो परिणामयदे कम्मं कम्मत्तमिदि मिच्छा ॥११९॥
णियमा कम्मपरिणदं कम्मं चिय होदि पोग्गलं दव्वं।
तह तं णाणावरणाइपरिणदं मुणसु तच्चेव॥१२०॥

जीवे न स्वयं बद्धं न स्वयं परिणमते कर्मभावेन।
यदि पुद्गलद्रव्यमिदमपरिणामि तदा भवति॥११६॥
कार्मणवर्गणासु चापरिणाममानासु कर्मभावेन।
संसारस्याभाव: प्रसजति सांख्यसमयो वा॥११७॥
जीव: परिणामयति पुद्गलद्रव्याणि कर्मभावेन।
तानि स्वयमपरिणाममानानि कथं नु परिणामयति चेतयिता ॥११८॥
अथ स्वयमेव हि परिणमते कर्मभावेन पुद्गलं द्रव्यम्।
जीव: परिणामयति कर्म कर्मत्वमिति मिथ्या॥११९॥
नियमात्कर्मपरिणतं कर्म चैव भवति पुद्गलं द्रव्यं ।
तथा तद्ज्ञानावरणादिपरिणतं जानीत तच्चैव॥१२०॥

पुद्गलद्रव्य न स्वयं बंधे, ना परिणमता मान।
अपरिणामी सिद्ध हुआ, पुद्गलद्रव्य तु जान॥३.४८.११६॥

और कार्मणवर्गणा, न परिणमन कर्मभाव।
सांख्यमत जो मानता, संसार का अभाव॥३.४९.११७॥

परिणमाता जीव यदि, पुद्गलद्रव्य कर्मभाव।
स्व न परिणमति वर्गणा, चेतन क्युँकर धाव॥३.५०.११८॥

स्वयं ही जो परिणमता, पुद्गलद्रव्य कर्मभाव।
परिणमाता जीव पुद्गल, कथन मिथ्या भाव॥३.५१.११९॥

कर्म परिणमित पुद्गलद्रव्य, कर्म ही इसको मान।
ज्ञानावरणादि परिणमित, पुद्गलद्रव्य ही जान॥३.५२.१२०॥

यह पुद्गलद्रव्य जीव में स्वयं नहीं बंधा और कर्मभाव से स्वयं नहीं परिणमता, यदि ऐसा माना जाये तो वह अपरिणामी सिद्ध होता है।

और कार्मणवर्गणाएँ कर्म भाव से नहीं परिणमती होने से संसार का अभाव सिद्ध होता है अथवा सांख्यमत का प्रसंग आता है। और जीव पुद्गलद्रव्यो को कर्मभाव से परिणामता है ऐसा माना जाय तो यह प्रश्न होता है कि स्वयं नहीं परिणमती हुई उन वर्गणाओं को चेतन आत्मा कैसे परिणमन करा सकता है? अथवा यदि पुद्गलद्रव्य अपने आप ही कर्मभाव से परिणमन करता है ऐसा माना जाय तो जीव कर्म को अथवा पुद्गलद्रव्य को कर्मरूप परिणमन कराता है यह कथन मिथ्या सिद्ध होता है। इसलिये जैसे नियम से कर्मरूप परिणमित पुद्गलद्रव्य कर्म ही है इसी प्रकार ज्ञानावरणादिरूप परिणमित पुद्गलद्रव्य ज्ञानावरणादि ही है ऐसा जानो।

If you believe that physical matter does not get bound to the Self on its own accord, nor does it evolve into modes of karma on its own accord, then, it becomes immutable. Or else, if you believe that the karmic molecules (vargaòâ) do not get transformed into various karmic modes, then this belief will lead to non-existence of the worldly state of the soul (saÉsâra), identical with the system.

If you maintain that the Self transforms the karmic molecules into various karmic modes, then how can the Self cause transformation in a substance that, by nature, is immutable? Or else, if you believe that the physical matter, on its own accord, transforms into various modes of karmas, then it will be false to say that jîva causes transformation of karmic matter into karmic modes. Therefore, in reality, just as the karmic molecules which get transformed into various karmic modes are material substance, in the same way, karmic modifications like knowledge-obscuring karmas etc., are mutated states of the karmic substance.

ण सयं बद्धो कम्मे ण सयं परिणमदि कोहमादिहिं।
जदि एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि॥१२१॥

अपरिणमंतम्हि सयं जीवे कोहादिएहिं भावेहिं ।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा॥१२२॥

पोग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं।
तं सयमपरिणमंतं कहं णु परिणामयदि कोहो॥१२३॥

अह समयप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धि।
कोहो परिणामयदे जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा ॥१२४॥

कोहिवजुत्तो कोहो माणुवजुत्तो य माणमेवादा।
माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवदि लोहो ॥१२५॥

न स्वयं बद्ध: कर्मणि न स्वयं परिणमते क्रोधादिभि:।
यद्येष: तव जीवोपरिणामी तदा भवति॥१२१॥

अपरिणममाने स्वयं जीवे क्रोधादिभि: भावै:।
संसारस्याभाव: प्रसजति सांख्यसमयो वा ॥१२२॥

पुद्गलकर्म क्रोधों जीवं परिणामयति क्रोधत्वम्।
तं स्वयमपरिणममानं कथं नु परिणामयति क्रोध:॥१२३॥

अथ स्वयमात्मा परिणमते क्रोधभावेन एषा ते बुद्धि:।
क्रोध: परिणामयति जीवं क्रोधत्वमिति मिथ्या॥१२४॥

क्रोधोपयुक्त: क्रोधों मानोपयुक्तकश्च: मान एवात्मा ।
मायोपयुक्तो माया लोभोपयुक्तो भवति लोभ:॥१२५॥

स्वयं कर्म में बंधे नहीं, न क्रोध परिणत भाव।
ऐसी मिथ्या सिद्ध करे, अपरिणामी स्वभाव॥३.५३.१२१॥

जीव स्व परिणमे नहीं, क्रोधादि के भाव।
सांख्यमत की सिद्धि हो, जग का होय अभाव॥३.५४.१२२॥

क्रोधादि तो पुद्गल है, जो परिणमाय जीव।
जो स्वयं परिणमें नहीं, कैसे घुमाय जीव॥३.५५.१२३॥

यदि स्वयं जीव परिणमे, क्रोधादि के भाव।
क्रोध घुमाये सत्य नहीं, सिद्ध हुआ स्वभाव॥३.५६.१२४॥

क्रोध लिप्त है क्रोध ही, मान युक्त है मान।
लोभ व माया लिप्त हो, आत्मा वैसी जान॥३.५७.१२५॥

यदि तेरा यह मत है कि जीव कर्म में स्वयं नहीं बंधा और क्रोधादिभाव से स्वयं नहीं परिणमता तो वह जीव अपरिणामी सिद्ध होता है और जीव स्वयं क्रोधादिभावरुप नहीं परिणमता होने से संसार का अभाव सिद्ध होता है।

और यदि तू ऐसा मानता है कि पुद्गलकर्म जो क्रोध है वो जीव को क्रोधरुप परिणमन कराता है तो स्वयं नहीं परिणमते जीव को क्रोध कैसे परिणमन करा सकता है? यदि आत्मा अपने आप क्रोधभाव से परिणमता है तो क्रोध जीव को क्रोधरुप परिणमन कराता है यह कथन मिथ्या सिद्ध हुआ।

इसलिये सिद्धान्त यह है कि क्रोध में उपयुक्त आत्मा क्रोध ही है, मान में उपयुक्त आत्मा मान ही है, माया में उपयुक्त आत्मा माया है और लोभ में उपयुक्त आत्मा लोभ है।

(Addressing the disciple of the SâÉkhya philosophy, the Âchârya says –) If you believe that the soul by itself is not bound by karmas, and that it does not have emotional modifications like anger, then it must, by nature, remain non-manifesting. And if the soul does not have emotional modifications like anger, then empirical life (saÉsâra) will cease to be, akin to the SâÉkhya faith.

If you maintain that karmic matter like anger, by its own, causes emotional modifications (like anger etc.) in the soul, then how is it possible for the karmic matter, like anger, to cause modification in the soul which, by nature, is immutable?

If you believe that the soul undergoes emotional modification of anger on its own accord, then it will be false to say that the karmic matter of anger causes emotional modification (of anger) in the soul.

(Therefore, it follows that–) The soul which manifests its consciousness in the psychic state of anger is anger itself; the soul which manifests its consciousness in the psychic state of pride is pride itself; the soul which manifests its consciousness in the psychic state of deceitfulness is deceitfulness itself; and the soul which manifests its consciousness in the psychic state of greed is greed itself.

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स
णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स॥१२६॥

यं करोति भावमात्मा कर्ता स भवति तस्य कर्मणः।
ज्ञानिनः स ज्ञानमयोऽज्ञानमयोऽज्ञानिनः॥१२६॥

जो भाव आत्मा करे, कर्ता उसको जान।
ज्ञानी तो हो ज्ञानमय, अज्ञानी हो अज्ञान॥३.५८.१२६॥

आत्मा जिस भाव को करता है, वह उस भावरूप कर्म का कर्ता होता है। ज्ञानी के लिए वह भाव ज्ञानमय होता है और अज्ञानी के लिए अज्ञानमय।

Whatever mode the soul adopts, it becomes the doer of that karmic disposition. For the knower, the disposition is full of knowledge; for the ignorant, it is full of ignorance.

अण्णाणमओ भावो अण्णाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि॥१२७॥

अज्ञानमयो भावोऽज्ञानिनः करोति तेन कर्माणि।
ज्ञानमयो ज्ञानिनस्तु न करोति तस्मात्तु कर्माणि॥१२७॥

कर्म से अज्ञानी करे, अज्ञानमय है भाव।
ज्ञानी कर्म को न करे, है ज्ञानमय स्वभाव॥३.५९.१२७॥

अज्ञानी के अज्ञानमय भाव होते हैं इसलिए वह कर्म करता है। ज्ञानी के ज्ञानमय भाव होते हैं, इसलिए वह कर्म नहीं करता।

The ignorant performs karma due to the disposition of unawareness, whereas the wise does not perform karma, as his disposition is filled with knowledge.

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हुणाणमया॥१२८॥
अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स॥१२९॥

ज्ञानमयाद्भावात् ज्ञानमयश्चैव जायते भावः।
यस्मात् तस्मात् ज्ञानिनः सर्वे भावाः खलु ज्ञानमयाः॥१२८॥
अज्ञानमयाद्भावाद् अज्ञानश्चैव जायते भावः।
यस्मात् तस्मात् भावाः अज्ञानमयाः अज्ञानिनः॥१२९॥

भाव ज्ञानमय हो उत्पन्न, जब ज्ञानमय स्वभाव।
इसीलिए सब ज्ञान है, ज्ञानी जानन भाव॥३.६०.१२८॥

भाव अज्ञानमय उपजे, अज्ञानमय स्वभाव।
अज्ञानी के अज्ञान है, अज्ञान लिप्त सब भाव॥३.६१.१२९॥

क्योंकि ज्ञानमय भावों से ज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होता है, इसलिए ज्ञानी के सभी भाव ज्ञानमय होते हैं।[SEP]और अज्ञानमय भावों से अज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होता है, इसलिए अज्ञानी के सभी भाव अज्ञानमय होते हैं।

From knowledge-oriented disposition arises knowledge again; hence all manifestations of a wise soul are filled with knowledge.
[SEP]From ignorance-oriented disposition arises ignorance only; hence all manifestations of an ignorant soul are filled with ignorance.

कणयमया भावादो जायंते कुण्डलादओ भावा।
अयमयया भावादो जह जायंते दु कडयादी॥१३०॥
अण्णाणमया भावा अण्णाणिणो बहुविहा वि जायंते।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति॥१३१॥

कनकमयाद्भावाज्जायन्ते कुण्डलादयो भावाः।
अयोमयकाद्भावाद्यथा जायन्ते कटकादयः॥१३०॥
अज्ञानमया भावा अज्ञानिनो बहुविधा अपि जायन्ते।
ज्ञानिनस्तु ज्ञानमयाः सर्वे भावास्तथा भवन्ति॥१३१॥

भाव जब हो स्वर्ण के, उपजे कुण्डल भाव।
भाव जब हो लोह के, होय कठोर स्वभाव॥३.६२.१३०॥

अज्ञानी के उसी तरह, अज्ञानमय हो भाव।
ज्ञानी के हो ज्ञानमय, जब ज्ञान ही स्वभाव॥३.६३.१३१॥

जैसे स्वर्णमय भाव से कुण्डलादि स्वर्णमय भाव उत्पन्न होते हैं, और लोहमय भाव से कड़ा आदि लोहमय भाव उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी के अज्ञानमय भाव अनेक प्रकार से उत्पन्न होते हैं और ज्ञानी के समस्त भाव ज्ञानमय होते हैं।

As from a golden base come golden ornaments and from iron arise iron articles, similarly from the ignorant arise manifold forms of ignorance, while the knower's every disposition is of the nature of knowledge.

अण्णाणस्य स उदओ जा जीवाणां अतच्चउवलद्धी।
मिच्छत्तस्स दु उदओ जीवस्स असद्दहाणत्तं॥१३२॥
उदओ असंजमस्स दु जं जीवाणां हवेइ अविरमणं।
जो दु कलुसोवओगो जीवाणां सो कसाउदओ॥१३३॥
तं जाण जोगउदयं जो जीवाणां तु चिट्ठउच्छाहो।
सोहणमसोहणं वा कायव्वो विरदिभावो वा॥१३४॥
एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागदं जं तु।
परिणमदे अट्ठविहं णाणावरणादिभावेहिं॥१३५॥
तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागदं जइया।
तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं॥१३६॥

अज्ञानस्य स उदयो या जीवानामतत्त्वोपलब्धिः।
मिथ्यात्वस्य तूदयो जीवस्याश्रद्दधानत्वम्॥१३२॥

उदयोऽसंयमस्य तु यज्जीवानां भवेदविरणम्।
यस्तु कलुषोपयोगो जीवानां स कषायोदयः॥१३३॥

तं जानीहि योगोदयं यो जीवानां तु चेष्टोत्साहः।
शोभनोऽशोभनो वा कर्तव्यो विरतिभावो वा॥१३४॥

एतेषु हेतुभूतेषु कार्मणवर्गणागतं यत्तु।
परिणमतेऽष्टविधं ज्ञानावरणादिभावैः॥१३५॥

तत्खलु जीवनिबद्धं कार्मणवर्गणागतं यदा।
तदा तु भवति हेतुर्जीवः परिणामभावानाम्॥१३६॥

तत्त्वका अज्ञान जीव को, उदय समझो अज्ञान।
मिथ्यात्व का जब हो उदय, जीव नहीं श्रद्धान॥३.६४.१३२॥

असंयम का जब हो उदय, भाव नहीं हो त्याग।
मलिन उपयोग जीव का, उदय कषाय व राग॥३.६५.१३३॥

योग का जब रहे उदय, चेष्टा का उत्साह।
भाव प्रवृत्ति निवृत्ति हो, शुभ अशुभ की राह॥३.६६.१३४॥

उदय जब हेतुभूत हो, कार्मणवर्गणा मान।
आठ तरह से परिणमे, ज्ञानावर्णादि जान॥३.६७.१३५॥

तब जीव का बंधन हो, कार्मणवर्गणा जान।
तब परिणाम हेतु बने, रहते भाव अज्ञान॥३.६८.१३६॥

जीवों के जो तत्त्व का अज्ञान है वह अज्ञान का उदय है, और जीव का जो अश्रद्धान है वह मिथ्यात्व का उदय है।जो अत्यागभाव है वह असंयम का उदय है, और मलिन उपयोग कषाय का उदय है।जो शुभ या अशुभ प्रवृत्ति या निवृत्तिरूप चेष्टा है, वह योग का उदय है।जब ये सब कारणरूप होते हैं, तब पुद्गलद्रव्य (कर्मवर्गणा) आठ प्रकार से—ज्ञानावरण आदि रूप में परिणमते हैं।ऐसी अवस्था में वे कर्मवर्गणाएं जीव में बंधती हैं, तब जीव इन परिणाम रूप कर्मों का हेतु होता है।

Ignorance about reality is the rise of *ajñāna* (ignorance), Lack of faith is the rise of *mithyātva* (false belief). Non-restraint is the result of avirati (absence of renunciation), Polluted consciousness is due to rise of passions (*kaṣāya*).[SEP]The activity of body, speech, and mind—whether virtuous or non-virtuous—is due to the rise of *yoga*. Due to these causal factors, the karmic matter transforms into eight kinds of karmas such as knowledge-obscuring etc. At that point, karmic bondage happens, and the ignorant soul becomes the cause of these transformations.

जदि जीवस्स सह एव पउग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो।
एवं पउग्गलजीवाउ खु दुमा अपि कम्मत्तमागम्या॥१३७॥
एकस्स तु परिणामो पउग्गलदव्वस्स कम्मभावेण।
तं जीवभावहेतूभिओ विणा कम्मस्स परिणामो॥१३८॥

यदि जीवेन सह चैव पुद्गलद्रव्यस्य कर्मपरिणामः।
एवं पुद्गलजीवौ खलु द्वावपि कर्मत्वमापन्नौ॥१३७॥
एकस्य तु परिणामः पुद्गलद्रव्यस्य कर्मभावेन।
तज्जीवभावहेतुभिर्विना कर्मणः परिणामः॥१३८॥

यदि पुद्गल जीव संग करे, कर्मरुप परिणाम।
कर्मरुप को प्राप्त हो, दोनो के परिणाम॥३.६९.१३७॥
पुद्गल ही परिणमन करे, होता कर्म का भाव।
जीव रहता अलग थलग, निमित्त नहीं स्वभाव॥३.७०.१३८॥

यदि पुद्गलद्रव्य का जीव के साथ मिलकर कर्मरूप परिणाम होता है तो पुद्गल और जीव दोनों ही कर्म स्वरूप हो जायेंगे।परन्तु वास्तव में कर्म स्वरूप परिणाम तो केवल पुद्गलद्रव्य के ही होते हैं; जीवभावरूप कारणों से रहित होते हुए भी कर्म का परिणाम होता है।

If karmic transformation occurs jointly through soul and matter, then both will be considered to possess karmic nature.But in truth, the karmic transformation pertains only to matter, independent of any transformation in the soul.

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा हु होंति रागादि।
एवं जीवो कम्मं च दो वि रागादिमावण्णा॥१३९॥
एक्कस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहिं।
ता कम्मोदयहेदूहिं विणा जीवस्स परिणामो॥१४०॥

जीवस्य तु कर्मणा च सह परिणामाः खलु भवन्ति रागादयः।
एवं जीवः कर्म च द्वे अपि रागादित्वमापन्ने॥१३९॥
एकस्य तु परिणामो जायते जीवस्य रागादिभिः।
तत्कर्मोदयहेतुभिर्विना जीवस्य परिणामः॥१४०॥

यदि जीव कर्म संग करे, राग आदि परिणाम।
दोनो मिलकर राग हो, जीव कर्म का नाम॥३.७१.१३९॥
पर राग भाव तो जीव के, कर्म के नहीं भाव।
निमित्त भी नहीं काम है, जीव रहे स्वभाव॥३.७२.१४०॥

यदि जीव और कर्म दोनों मिलकर रागादि परिणाम करते हैं, तो दोनों ही रागादि रूप हो जायेंगे।परन्तु रागादि परिणाम तो केवल जीव के ही होते हैं, कर्मोदय रूप कारणों से रहित होते हुए भी वे परिणाम होते हैं।

If passions like attachment arise from both the soul and karmic matter, then both will be said to assume the form of attachment. But attachment arises solely in the soul, and not from karmic matter—even without karmic cause, soul alone undergoes such passions.

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं ववहारणयभणिदं।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवदि कम्मं॥१४१॥

जीवे कर्म बद्धं स्पृष्टं चेति व्यवहारनयभणितम्।
शुद्धनयस्य तु जीवे अबद्धस्पृष्टं भवति कर्म॥१४१॥

बद्ध स्पर्शित जीव कर्म माने नय व्यवहार।
जीव-कर्म अबद्ध अस्पर्शित, है शुद्धनय का सार॥३.७३.१४१॥

व्यवहारनय से जीव कर्म के प्रदेशों से बंधा हुआ है तथा स्पर्शित है,और शुद्धनय से जीव से कर्म अबद्ध और अस्पर्शित है।

As per Vyavhar Nay, karmic matter is bonded and touches the soul.As per Nishchay Nay, karmic matter is neither bonded to nor touches the pure soul.

कम्मं बद्धंबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं।
पक्खादिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो॥१४२॥

कर्म बद्धंबद्धं जीवे एवं तु जानीहि नयपक्षम्।
पक्षातिक्रान्तः पुनर्भणयते यः स समयसारः॥१४२॥

जीव कर्म बद्ध या नहीं, नयपक्ष व्यापार।
पक्षपात से परे रहे, है वही समयसार॥३.७४.१४२॥

जीव में कर्म बद्ध है अथवा अबद्ध है, इस प्रकार तो नयपक्ष जानो;
किन्तु जो पक्षातीत कहलाता है वह ही समयसार है।

**Whether the soul is bonded or unbonded with karma is the matter of viewpoints.
But one who transcends all viewpoints — that alone is *Samaysara*.**

दोण्ह वि णायाण भणिदं जाणदि णवरं तु समयपडिबद्धो।
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचि वि णयपक्खपरिहीणो॥१४३॥

द्वयोरपि नययौर्भणितं जानाति केवलं तु समयप्रतिबद्धः।
न तु नयपक्षं गृह्णाति किञ्चिदपि नयपक्षपरिहीनः॥१४३॥

जीव जब नयपक्ष रहित, आत्मा का ही ज्ञान।
ग्रहण किंचित ना करे, जाने पक्ष विज्ञान॥३.७५.१४३॥

नयपक्ष से रहित होकर, जो आत्मा अपने चित्स्वरूप का अनुभव करता है वह केवल विभिन्न नयों के कथन को जानता है, परन्तु वह उनमें से किसी भी नयपक्ष को ग्रहण नहीं करता।

One who is established in *Samay* (the pure Self), merely knows both standpoints but accepts none – completely free from partial viewpoints.

सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो॥१४४॥

सम्यग्दर्शनज्ञानमेष लभत इति केवलं व्यपदेशं।
सर्वनयपक्षरहितो भणितो यः स समयसारः॥१४४॥

हो सर्व नय पक्ष रहित, है वही समयसार।
सम्यग्दर्शन ज्ञान कहो, अंतर नहीं विचार॥३.७६.१४४॥

जो सर्व नय पक्षों से रहित कहा गया है वही समयसार है; उसे केवल 'सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान' की संज्ञा दी गई है, लेकिन वास्तव में इन दोनों में कोई भेद नहीं है।

That which is free from all viewpoints is *Samaysaar*. What is designated as right faith and right knowledge is only a conventional name – essentially, they are one.

4 पुण्य-पाप अधिकार Virtues & Sins

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणहं सुसीलं।
कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि॥१४५॥

कर्म अशुभं कुशीलं शुभकर्म चापि जानीथ सुशीलम्।
कथं तद्भवति सुशीलं यत्संसारं प्रवेशयति॥१४५॥

कुशील है कर्म अशुभ, शुभ सुशील सुविचार।
किन्तु कैसे सुशील हो, घुमावे जो संसार॥४.१.१४५॥

अशुभ कर्म कुशील है और शुभ कर्म सुशील है ऐसा तुम जानते हो! किन्तु वह सुशील कैसे हो सकता है जो जीव को संसार में प्रवेश कराता है।

Sins are known to be vicious and virtues as good, but how can that virtue be good which causes the soul to enter the cycle of transmigration?

सोव्वण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं॥१४६॥

सौवर्णिकमपि निगलं बध्नाति कालायसमपि यथा पुरुषम्।
बध्नात्येवं जीवं शुभमशुभं वा कृतं कर्म॥१४६॥

बेड़ी बाँधे जीव को, कंचन हो या लोह।
कर्म शुभ या अशुभ हो, जीव बंधे जब मोह॥४.२.१४६॥

जैसे सोने की बेड़ी भी पुरुष को बाँधती है और लोहे की बेड़ी भी बाँधती है, इसीप्रकार शुभ अथवा अशुभ कर्म भी जीव को बाँधते हैं।

Whether the shackle is made of gold or iron, it still binds a man. In the same way, whether karma is virtuous or wicked, it binds the soul.

तम्हा दु कुसीलेहि य रागं मा कुणह मा व संसग्गं।
साहीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण॥१४७॥

तस्मात्तु कुशीलाभ्यां च रागं मा कुरुत्त मा वा संसर्गम्।
स्वाधीनो हि विनाशः कुशीलसंसर्गरागेण॥१४७॥

दोनो कर्म कुशील है, न कर राग नहीं पास।
जो संग रहा कुशील के, स्वाधीनता विनाश॥४.३.१४७॥

इसलिये इन दोनों कुशीलों (अशुभ और शुभ कर्मों) के साथ राग मत करो और संसर्ग भी मत करो क्योंकि कुशील (कर्म) के साथ संसर्ग और राग करने से आत्मा की स्वाधीनता नष्ट हो जाती है।

Therefore, do not attach or associate with either sinful or virtuous karmas, for attachment to these leads to the destruction of the soul's freedom.

जह णाम को वि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता।
वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रागकरणं च॥१४८॥
एमेव कम्मपयडीसीलसहावं च कुच्छिदं णादुं।
वज्जंति परिहरंति य तस्संसग्गं सहावरदा॥१४९॥

यथा नाम कोऽपि पुरुषः कुत्सितशीलं जनं विज्ञाय।
वर्जयति तेन समकं संसर्गं रागकरणं च॥१४८॥
एवमेव कर्मप्रकृतिशीलस्वभावं च कुत्सितं ज्ञात्वा।
वर्जयन्ति परिहरन्ति च तत्संसर्गं स्वभावरताः॥१४९॥

जैसे कोई सज्जन जन, छोड़े कुशील जान।
ना संग न ही राग करे, जब हो जाता ज्ञान॥४.४.१४८॥
जब स्वभावरत जीव हो, छोड़े संग व राग।
कर्मप्रकृति सुशील हो, तब भी करता त्याग॥४.५.१४९॥

जैसे कोई व्यक्ति जब किसी दुर्गुणयुक्त व्यक्ति को पहचान लेता है तो उसके साथ संसर्ग और राग करना छोड़ देता है। उसी प्रकार जो आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव में रत होता है, वह कर्म की प्रकृति—even यदि वह शुभ भी हो—को दोषयुक्त समझकर उसके संग और राग को त्याग देता है।

Just as a person avoids contact and attachment with one known to be of vile character. Likewise, the soul rooted in its own nature discards association and attachment even with virtuous karmas, knowing their nature to be inherently impure.

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥१५०॥

रक्तो बध्नाति कर्म मुच्यते जीवो विरागसम्प्राप्तः।
एषो जिनोपदेषः तस्मात् कर्मसु मा रज्यस्व॥१५०॥

रागी बांधे कर्म को, त्यागी छूटा जाय।
है जिनेन्द्र उपदेश ये, कर्म ही राग मिटाय॥४.६.१५०॥

रागयुक्त जीव कर्म को बांधता है और जो जीव वैराग्य को प्राप्त होता है वह कर्म से मुक्त हो जाता है; यह जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है। इसलिए तू कर्मों में राग मत कर।

The soul binds karma through attachment and is liberated through detachment; this is the teaching of the Jinas. Hence, do not get attached to karma.

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी पाणी।
तम्हि ट्ठिदा सहाव् मुणिणो पावंति णिव्वाणं॥१५१॥

परमार्थः खलु समयः शुद्धो यः केवली मुनिर्ज्ञानी।
तस्मिन् स्थिताः स्वभावे मुनयः प्राप्नुवन्ति निर्वाणम्॥१५१॥

शुद्ध आत्मा निश्चय से, केवली मुनि ज्ञान।
मुनि स्थित स्वभाव में, मुक्ति मिले भगवान॥४.७.१५१॥

निश्चय से जो आत्मा है वह समय स्वरूप, शुद्ध, केवली, मुनि और ज्ञानी है। जो मुनि इस स्वभाव में स्थित होते हैं, वे निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

From the absolute standpoint, the Self is pure, omniscient, ascetic, and the knower. Those ascetics who abide in this true nature attain liberation.

परमट्ठमि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेदि।
तं सव्वं बालतवं बालवदं बेंति सव्वण्हू॥१५२॥

परमार्थे त्वस्थितः यः करोति तपो व्रतं च धारयति।
तत्सर्वे बालतपो बालव्रतं ब्रुवन्ति सर्वज्ञः॥१५२॥

जीव नहीं परमार्थ में, तप में व्रत में ध्यान।
तपो-व्रत को बाल कहा, तीर्थंकर का ज्ञान॥४.८.१५२॥

जो आत्मा परमार्थ में स्थित नहीं है और तप करता है या व्रत धारण करता है, उसके उन सब तप और व्रत को सर्वज्ञ तीर्थंकर बालतप और बालव्रत कहते हैं।

If one is not established in the absolute Self but practices austerities and vows, the omniscient call such efforts as childish austerities and vows.

वदणियमाणि धरंता सीलाणी तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति॥१५३॥

व्रतनियमात् धारयन्तः शीलानि तथा तपश्च कुर्वन्तः।
परमार्थबाह्या ये निर्वाणं ते न विन्दन्ति॥१५३॥

व्रत नियम धारण करे, शील तप का ध्यान।
परम अर्थ में हो नहीं, निर्वाण ना हो जान॥४.९.१५३॥

व्रत और नियमों को धारण करते हुए, शील और तप करते हुए भी जो आत्मा के परमार्थ स्वरूप से बाह्य हैं, वे निर्वाण को प्राप्त नहीं करते।

Even while observing vows, rules, celibacy, and austerity—those who remain outside the realization of the true Self do not attain liberation.

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।
संसारगणहेदुं पि मोक्खहेदुं अजाणंता॥१५४॥

परमार्थबाह्या ये ते अज्ञानेन पुण्यमिच्छन्ति।
संसारगमनहेतुमपि मोक्षहेतुमजानन्तः॥१५४॥

परमार्थ से बाहर है, मुक्ति का नहीं ज्ञान।
पुण्य घुमावे जगत में, चाहत पुण्य न ज्ञान॥४.१०.१५४॥

जो आत्मा के परमार्थ स्वरूप से बाहर हैं, वे मोक्ष के कारण को न जानते हुए भी अज्ञानवश पुण्य को चाहते हैं, जो कि वास्तव में संसार में भ्रमण कराने वाला कारण है।

Those who are outside the path of the true Self, not knowing the real cause of liberation, ignorantly desire merit (punya), which is actually the cause of worldly transmigration.

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।
रागादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो॥१५५॥

जीवादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं तेषामधिगमो ज्ञानम्।
रागादिपरिहरणं चरणं एषस्तु मोक्षपथः॥१५५॥

श्रद्धान सम्यक्त्व तत्व है, जाने तो है ज्ञान।
रागादि का त्याग हो, चारित्र की पहचान॥४.११.१५५॥

जीव आदि पदार्थों पर श्रद्धा रखना सम्यक्त्व है, उन पदार्थों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना ज्ञान है, और राग आदि दोषों का परिहार करना चारित्र है—यही मोक्ष का मार्ग है।

Right faith is belief in soul and other substances, right knowledge is to know them as they are, and right conduct is renunciation of passions—this is the path to liberation.

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवंट्टति।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ॥१५६॥

मुक्त्वा निश्चयार्थं व्यवहारेण विद्वांसः प्रवर्तन्ते।
परमार्थमाश्रितानां तु यतीनां कर्मक्षयो विहितः॥१५६॥

छोड़कर निश्चयनय को, व्यवहार में विद्वान।
मुनि आश्रित परमार्थ में, उसके ही क्षय जान॥४.१२.१५६॥

विद्वान व्यवहार नय से प्रवृत्त होते हैं, निश्चयनय को छोड़कर; परंतु परमार्थ में स्थित मुनियों के ही कर्मों का क्षय शास्त्रों में बताया गया है।

Wise men function through empirical point of view after setting aside the absolute, but only ascetics who dwell in the ultimate truth are said to attain destruction of karmas.

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णादव्वं॥१५७॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णादव्वं॥१५८॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
कसायमलोच्छण्णं तह चारित्तं पि णादव्वं॥१५९॥

वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलमेलनासक्तः।
मिथ्यात्वमलावच्छन्नं तथा सम्यक्त्वं खलु ज्ञातव्यं॥१५७॥
वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलमेलनासक्तः।
अज्ञानमलावच्छन्नं तथा ज्ञानं भवति ज्ञातव्यम्॥१५८॥
वस्त्रस्य श्वेतभावो यथा नश्यति मलमेलनासक्तः।
कषायमलीवच्छन्नं तथा चारित्रमपि ज्ञातव्यम्॥१५९॥

मैल मिले जब वस्त्र से, नष्ट श्वेत का भाव।
मिथ्यात्व मिले आत्म से, तब सम्यक्त्व अभाव॥४.१३.१५७॥
मैल मिले जब वस्त्र से, नष्ट श्वेत का भाव।
अज्ञान मिले आत्म से, तब ज्ञान का अभाव॥४.१३.१५८॥
मैल मिले जब वस्त्र से, नष्ट श्वेत का भाव।
कषाय मिले आत्म से, तब चारित्र अभाव॥४.१३.१५९॥

जैसे वस्त्र का उज्ज्वल रंग मैल से लुप्त होता है, वैसे ही आत्मा का ज्ञान अज्ञान के आवरण से नष्ट होता है।

Just as whiteness disappears from cloth with stains, right conduct vanishes from the soul with passions.

सो सव्वणाणदरिसी कम्मरएण णियेणावच्छण्णो।
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं॥१६०॥

स सर्वज्ञानदर्शी कर्मरजसा निजेनावच्छन्नः।
संसारसमापन्नो न विजानाति सर्वतः सर्वम्॥१६०॥

सर्व ज्ञान दर्शी जीव है, पर कर्म मल अज्ञान।
संसार में रमता फिरे, जाने ना सब ज्ञान॥४.१६.१६०॥

वह आत्मा सर्व को जानने और देखने वाला है लेकिन कर्म मल से लिप्त होने के कारण संसार में रमा हुआ सर्व प्रकार से सर्व को नहीं जानता।

The soul, though inherently all-knowing and all-seeing, is veiled by karmic dust and, caught in worldly existence, fails to know everything.

सम्मतपडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहयं।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठि त्ति पादव्वो॥१६१॥
णाणस्य पडिणिबद्धं अण्णाणं जिणवरेहि परिकहयं।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणि होदि पादव्वो॥१६२॥
चारित्त पडिणिबद्धं कसायं जिणवरेहि परिकहयं।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि पादव्वो॥१६३॥

सम्यक्त्व प्रतिनिबद्धं मिथ्यत्वं जिनवरैः परिकथितम्।
तस्योदयेन जीवो मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः॥१६१॥
ज्ञानस्य प्रतिनिबद्धं अज्ञानं जिनवरैः परिकथितम्।
तस्योदयेन जीवोऽज्ञानी भवति ज्ञातव्यः॥१६२॥
चारित्र प्रतिनिबद्धं कषायो जिनवरैः परिकथितः।
तस्योदयेन जीवोऽचारित्रो भवति ज्ञातव्यः॥१६३॥

मिथ्यात्व से सम्यक्त्व रुके, जिनवर का यह ज्ञान।
उदय जब मिथ्यात्व का, मिथ्यादृष्टि पहचान॥४.१७.१६१॥
अज्ञान से ज्ञान रुकता, जिनवर का यह ज्ञान।
उदय जब अज्ञान का, अज्ञानी पहचान॥४.१८.१६२॥
कषाय से चारित्र रुके, जिनवर का यह ज्ञान।
जब हो उदय कषाय का, जीव अचारित्रवान॥४.१९.१६३॥

जिनवरो ने कहा कि–

- सम्यक्त्व को रोकने वाला मिथ्यात्व है, उसके उदय से जीव मिथ्यादृष्टि होता है।
- ज्ञान को रोकने वाला अज्ञान है, उसके उदय से जीव अज्ञानी होता है।
- चारित्र को रोकने वाला कषाय है, उसके उदय से जीव अचारित्रवान होता है।

Right faith is obstructed by wrong belief—its rise makes the soul a wrong believer. Right knowledge is obstructed by ignorance—its rise makes the soul ignorant. Right conduct is obstructed by passions—its rise makes the soul without conduct.

5 आस्रव अधिकार Influx of Karma

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु।
बहुविहभेया जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा॥१६४॥
णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति।
तेसिं पि होदि जीवो य रागदोसादिभावकरो॥१६५॥

मिथ्यात्वमविरमणं कषाययोगी च संज्ञासंज्ञास्तु।
बहुविधभेदा जीवे तस्यैवानन्यपरिणामाः॥१६४॥
ज्ञानावरणाद्यस्य ते तु कर्मणः कारणं भवन्ति।
तेषामपि भवति जीवश्च रागद्वेषादिभावकरः॥१६५॥

मिथ्यात्व अविरति संज्ञ है, कषाय योग विकार।
विविध रीत उत्पन्न हो, जीव के ही विचार॥५.१.१६४॥
ज्ञानावरणादि आस्रव है, कर्म ही कारण जान।
जीव में ही उत्पन्न हो, राग द्वेष पहचान॥५.२.१६५॥

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये सब चेतन अवस्था वाले (संज्ञ) और अचेतन अवस्था वाले (असंज्ञ) भी होते हैं। जीव में उत्पन्न ये विविध प्रकार के भाव, जीव के ही अनन्य परिणाम होते हैं।[SEP]ज्ञानावरण आदि कर्मों के कारण होते हैं, लेकिन उनके भी हेतु रूप में राग-द्वेष आदि भाव करने वाला जीव ही होता है।

Wrong belief, non-abstinence, passions, and yog are both conscious and material states. These diverse states arise solely in the soul. The soul is also the cause of karmic influx like knowledge-obscuring karma, as it generates attachment and aversion.

णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो।
संते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो॥१६६॥

नास्ति त्वास्रवबन्धः सम्यग्दृष्टेरास्रवनिरोधः।
सन्ति पूर्वनिबद्धानि जानाति स तान्यबन्धन्॥१६६॥

सम्यग्दृष्टि बंधे नहीं, आस्रव हो ना जान।
नवीन कर्म बंधे नहीं, पूर्व कर्म का ज्ञान॥५.३.१६६॥

सम्यग्दृष्टि जीव के लिए कर्मों का आस्रव और बंध नहीं होता क्योंकि उसमें आस्रव का निरोध हो चुका होता है। परंतु पूर्वकाल में जो कर्म बंध चुके हैं, उनकी सत्ता को वह जानता रहता है, परंतु वह नए कर्मों का बंधन नहीं करता।

The right believer does not have karmic influx and hence no new bondage occurs. However, he is still aware of previously bound karmas without causing new bondage.

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो।
रागादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि॥१६७॥

भावो रागादियुतो जीवेन कृतस्तु बन्धको भणितः।
रागादिविप्रमुक्तकोऽबन्धको ज्ञायकः केवलम्॥१६७॥

नवीन कर्म का बंध हो, जब राग आदि भाव।
मात्र ज्ञायक बना रहे, रागादि नहीं भाव॥५.४.१६७॥

जब जीव में राग आदि भाव होते हैं तभी वह कर्मों का बंध करता है, इसलिए ऐसे भाव को बंधक कहा गया है। और जब वह राग आदि से मुक्त होता है, तब वह केवल ज्ञायक होता है और बंधक नहीं होता।

New karmic bondage occurs only when the soul entertains passions like attachment. If the soul is free from such passions, it remains only a knower and no bondage occurs.

पक्के फलम्हि पडिए जह ण फलं बज्झए पुणो विंटे।
जीवस्स कम्मभावे पडिए ण पुणोदयमुवेदि॥१६८॥

पक्के फले पतिते यथा न फलं बध्यते पुनर्वृन्तैः।
जीवस्य कर्मभावे पतिते न पुनरुदयमुपैति॥१६८॥

फल टूटे जब डाल से, जुड़े नहीं यह जान।
होय निर्जरा कर्म की, जीव नही दे स्थान॥५.५.१६८॥

जैसे पककर गिरा हुआ फल फिर से वृन्त से नहीं जुड़ता, वैसे ही जब कर्मभाव खिर जाता है (निर्जरा हो जाती है) तो वह पुनः जीव में उदय को प्राप्त नहीं होता।

Just as a ripened fruit once fallen from the branch cannot be reattached, the karma once shed from the soul does not come into fruition again.

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स।
कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वे वि णाणिस्स॥१६९॥

पृथ्वीपिण्डसमानाः पूर्वनिबद्धास्तु प्रत्ययास्तस्य।
कर्मशरीरेण तु ते बद्धाः सर्वेऽपि ज्ञानिनः॥१६९॥

मिट्टी के है पिण्ड से, कर्म बद्ध ये जान।
कार्मण तन से बंधे हुए, ज्ञानी का यह ज्ञान॥५.६.१६९॥

उस ज्ञानी जीव के पूर्व में बंधे हुए सभी कर्म, मिट्टी के पिंड के समान हैं, जो उसके कार्मण शरीर के साथ ही बंधे हुए हैं।

For the knower of the self, all previously bound karmas are like lumps of earth, merely attached to the karmic body.

चउविह अणेयभेयं बंधंते णाणदंसणगुणेहिं।
समए समए जम्हा तेण अबंधो त्ति णाणी दु॥१७०॥

चतुर्विधा अनेकभेदं बध्नन्ति ज्ञानदर्शनगुणाभ्याम्।
समये समये यस्मात् तेनाबन्ध इति ज्ञानी तु॥१७०॥

ज्ञानदर्शन गुण के निमित्त, आस्रव भेद चार।
समय समय कर्म बंधे, ज्ञानी अबद्ध विचार॥५.७.१७०॥

ज्ञान और दर्शन गुणों के निमित्त चार प्रकार के अनेक भेदों वाले कर्म समय समय पर जीव को बांधते हैं। इसलिए ज्ञानी जीव को अबन्ध मानना चाहिए।

Various forms of karmas get bound over time through four kinds of influx via knowledge and perception faculties. Hence, the knower remains unbounded.

जम्हा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमदि।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो॥१७१॥

यस्मात्तु जघन्यात् ज्ञानगुणात् पुनरपि परिणमते।
अन्यत्वं ज्ञानगुणः तेन तु स बन्धको भणितः॥१७१॥

क्षयोपक्षम जब तक रहे, परिणमता है ज्ञान।
फिर फिर परिणमता रहे, बंधन कारण जान॥५.८.१७१॥

जब तक ज्ञानगुण जघन्य रूप में स्थित है और पुनः पुनः विभिन्न प्रकार से परिणमित होता है, तब तक वह बंध का कारण होता है।

As long as the knowledge attribute continues transforming from lower to higher states through destruction-cum-subsidence, it becomes the cause of bondage.

दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण।
णाणी तेण दु बज्झदि पोग्गलकम्मेण विविहेण॥१७२॥

दर्शनज्ञानचारित्रं यत्परिणमते जघन्यभावेन।
ज्ञानी तेन तु बध्यते पुद्गलकर्मणा विविधेन॥१७२॥

दर्शन ज्ञान चरित्र का, जब तक जघन्य भाव।
पुद्गल कर्म बंधता रहे, ज्ञानी ज्ञान स्वभाव॥५.९.१७२॥

दर्शन, ज्ञान और चारित्र जब तक जघन्य रूप में परिणमित होते हैं, तब तक ज्ञानी भी विविध प्रकार के पुद्गल कर्मों से बंधता रहता है।

As long as faith, knowledge, and conduct transform in inferior states, even the wise soul gets bound by various types of karmic matter.

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया अत्थि सम्मदिट्ठिस्स।
उवओगप्पाओगं बंधते कम्मभावेण॥१७३॥
होदूण णिरुवभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा।
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं॥१७४॥
संता दु णिरुवभोज्जा बाला इत्थी जहेह पुरिसस्स।
बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स॥१७५॥
एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो भणिदो।
आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा॥१७६॥

सर्वे पूर्वनिबद्धास्तु प्रत्ययाः सन्ति सम्यग्दृष्टेः।
उपयोगप्रायोग्यं बध्नन्ति कर्मभावेन॥१७३॥
भूत्वा निरुपभोग्यानि तथा बध्नाति यथा भवन्त्युपभोगग्यानि।
सप्ताष्टविधानि भूतानि ज्ञानावरणादिभावैः॥१७४॥
सन्ति तु निरुपभोग्यानि बाला स्त्री यथेह पुरुषस्य।
बध्नाति तानि उपभोग्यानि तरुणी स्त्री यथा नरस्य॥१७५॥
एतेन कारणेन तु सम्यग्दृष्टिरबन्धको भणितः।
आस्रवभावाभावे न प्रत्यया बन्धका भणिताः॥१७६॥

जो आस्रव पहले बंधे, सम्यग्दृष्टि विद्यमान।
प्रयोग हो उपयोग का, नवीन बंधन जान॥५.१०.१७३॥
अनउपयोगी पूर्व में, उठे भोग के भाव।
ज्ञानावरणादि कर्म के, सात-आठ प्रभाव॥५.११.१७४॥
ज्यूँ निरुपभोग्य पुरुष को, कन्या जो हो बाल।
युवती बाँधे पुरुष को, नर की बिगड़े चाल॥५.१२.१७५॥
वैसे ही बंधता नहीं, सम्यक्दृष्टि जान।
आस्रव का अभाव है, सम्यक्दृष्टि ज्ञान॥५.१३.१७६॥

सम्यग्दृष्टि की सत्ता में पूर्व से बंधे हुए कर्म रहते हैं, जो उपयोग के प्रयोग के अनुसार कर्मभाव से बंधते हैं। वे पूर्व में निरुपभोग्य होते हैं पर जब उपभोग्य होते हैं तो ज्ञानावरणादि सात-आठ प्रकार के कर्मों को बंधन देते हैं। जैसे बालिका स्त्री पुरुष के लिए भोग्य नहीं होती परंतु युवती होने पर बंधनकारिणी होती है, वैसे ही पूर्व के कर्म उपभोग्य होकर ही बंधन करते हैं। परंतु सम्यग्दृष्टि में आस्रवभाव का अभाव होने से नवीन कर्म नहीं बंधते, इसीलिए सम्यग्दृष्टि अबंधक कहा गया है।

Even though past karmas are bonded before attaining right faith, they persist in the soul and bind due to activities of the soul. Initially unfit for fruition, they later mature and cause bondage of seven or eight kinds of karmas like knowledge obscuring. Just as a young girl is unfit for enjoyment but later as adult binds the man, similarly karmas bind on maturing. But samyakdrishti does not get bound again due to absence of attachment.

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस।
तम्हाआसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति॥१७७॥
हेदू चदुव्वियपो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति॥१७८॥

रागो द्वेषो मोहश्च आस्रवान् सन्ति सम्यग्दृष्टेः।
तस्मादास्रवभावेन विना हेतवो न प्रत्यया भवन्ति॥१७७॥
हेतुश्चतुर्विकल्पः अष्टविकल्पस्य कारणं भणितम्।
तेषामपि च रागादयस्तेषामभावे न बध्यन्ते॥१७८॥

राग द्वेष व मोह नहीं, सम्यग्दृष्टि अभाव।
द्रव्य कर्म बंधता नहीं, जब ना आस्रवभाव॥५.१४.१७७॥
आठ कर्म के हेतु हैं, चार विकल्प स्वभाव।
सम्यग्दृष्टि बंधता नहीं, रागादि का अभाव॥५.१५.१७८॥

सम्यग्दृष्टि जीव में राग, द्वेष और मोह नहीं होते इसलिए उसमें आस्रवभाव नहीं होता। बिना आस्रवभाव के द्रव्यकर्म के हेतु (प्रत्यय) भी कर्मबंधन नहीं करते। चार प्रकार के हेतुओं– मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग–को आठ प्रकार के कर्मों का कारण कहा गया है; किन्तु सम्यग्दृष्टि में चूँकि रागादि भाव नहीं होते इसलिए उनसे भी बंधन नहीं होता।

Since samyak drishti lacks attachment (rāga), aversion (dvesha), and delusion (moha), there is no karmic influx in him. Without influx, even the instrumental causes (hetu)—like wrong belief, non-abstinence, passions, and yoga—cannot result in bondage of eight kinds of karmas. Hence, due to absence of passions, samyak drishti doesn't get bonded.

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं।
मंसनसारुहिरादी भावे उदरग्गिसंजुत्तो॥१७९॥
तह णाणिस्य दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं।
बज्झंते कम्मं ते णयपरिहिणा दु ते जीवा॥१८०॥

यथापुरुषेणाहारो गृहीतः परिणमति सोऽनेकविधम्।
मांसवासारुधिरादीन् भावान् उदराग्निसंयुक्तः॥१७९॥
तथा ज्ञानिनस्तु पूर्वं ये बद्धाः प्रत्यया बहुविकल्पम्।
बध्नन्ति कर्म ते नयपरिहीनास्तु ते जीवाः॥१८०॥

जब भोजन प्राणी करे, ज्वाला अंदर एक।
मांस खून चर्बी बने, अंतर क्रिया अनेक॥५.१६.१७९॥
शुद्ध नय से च्युत हो, ज्ञानी का जब ज्ञान।
पूर्वबद्ध आस्रव करे, कर्म बंधन पहचान॥५.१७.१८०॥

जैसे पुरुष द्वारा ग्रहण किया गया आहार उदर की अग्नि से मिलकर मांस, नसा, रुधिर आदि अनेक प्रकार के रूप में परिणत होता है, वैसे ही ज्ञानी जीव जब शुद्ध नय से च्युत होता है तब उसके पूर्वबद्ध आस्रव बहुविध प्रकार के कर्मों के बंधन का कारण बनते हैं।

Just as food consumed by a person, under digestive fire, transforms into flesh, fat, and blood; similarly, if a knower deviates from the pure point of view, the past karmic influx becomes cause for manifold new karmic bondage.

6 संवर अधिकार stoppage of karma

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो।
कोहो कोहे चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो॥१८१॥
अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो।
उवओगम्हि य कम्मं णोकम्मं चावि णो अत्थि॥१८२॥
एदं तु अविवरीदं णाणं जइया दु होदि जीवस्स।
तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा॥१८३॥

उपयोग उपयोगः क्रोधादिषु नास्ति कोऽप्युपयोगः।
क्रोधः क्रोधे चैव हि उपयोगे नास्ति खलु क्रोधः॥१८१॥
अष्टविकल्पे कर्मणि नोकर्मणि चापि नास्त्युपयोगः।
उपयोगे च कर्म नोकर्म चापि नो अस्ति॥१८२॥
एतत्त्वविपरीतं ज्ञानं यदा तु भवति जीवस्य।
तदा न किञ्चित्करोति भावमुपयोगशुद्धात्मा॥१८३॥

कषाय में उपयोग नहीं, स्व में हो उपयोग।
क्रोध आदि क्रोध में, कषाय संग न योग॥६.१.१८१॥
आठ कर्म उपयोग रहित, नोकर्म ना उपयोग।
कर्म हो या नोकर्म हो, उपयोग का न योग॥६.२.१८२॥
होता है जब जीव को, ऐसा उल्टा ज्ञान।
उपयोगमय शुद्ध आत्मा, नहीं ओर हो जान॥६.३.१८३॥

उपयोग तो उपयोग में ही होता है, क्रोध आदि भावों में नहीं। क्रोध क्रोध में होता है, उपयोग में नहीं। आठ प्रकार के कर्म और नोकर्म में उपयोग नहीं होता, और उपयोग में कर्म व नोकर्म नहीं होते। जब यह विपरीत रहित (सही) ज्ञान जीव को होता है, तब उपयोगस्वरूप शुद्ध आत्मा उपयोग के अतिरिक्त अन्य किसी भाव को नहीं करता।

Consciousness exists only in consciousness, not in passions like anger. Anger exists in anger, not in consciousness. Neither eight karmas nor quasi-karmas (no-karma) contain consciousness, nor does consciousness contain them. When the soul attains this unwavering knowledge, the pure soul engaged in pure consciousness no longer engages in any other state.

जह कणयमग्गितवियं पि कणयभावं ण तं परिच्चयदि।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं॥१८४॥
एवं जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि रागमेवादं।
अण्णाणतमोच्छण्णो आदसहावं अयाणंतो॥१८५॥

यथा कनकमग्नितप्तमपि कनकभावं न तं परित्यजति।
तथा कर्मोदयतप्तो न जहाति ज्ञानी तु ज्ञानित्वम्॥१८४॥
एवं जानाति ज्ञानी अज्ञानी मनुते रागमेवात्मानम्।
अज्ञानतमोऽवच्छन्नः आत्मस्वभावमजानन्॥१८५॥

सोना अग्नि में तपता, छोड़े नहीं स्व भाव।
ज्ञनी के जब कर्म उदय, ज्ञान नहीं अभाव॥६.४.१८४॥
ज्ञानी ऐसा जानता, अज्ञानी अंधकार।
आत्म का समझे नहीं, राग का ही संसार॥६.५.१८५॥

जैसे सोना अग्नि में तपने पर भी अपना स्वर्णत्व नहीं छोड़ता है, वैसे ही ज्ञानी आत्मा कर्म के उदय में तपता हुआ भी ज्ञानस्वभाव को नहीं छोड़ता। ज्ञानी यह यथार्थ जानता है, जबकि अज्ञानी अज्ञान रूपी अंधकार से ढका हुआ आत्मा के स्वभाव को नहीं जानता और राग को ही आत्मा मान लेता है।

Just as gold heated in fire does not lose its golden nature, likewise, the knower does not lose his state of knowledge even while undergoing karmic fruition.SEP The wise knows this truth, but the ignorant, veiled by the darkness of ignorance, fails to realize the true nature of the soul and considers attachment as the self.

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि॥१८६॥

शुद्धं तु विजानन् शुद्धं चैवात्मानं लभते जीवः।
जानंस्त्वशुद्धमशुद्धमेवात्मानं लभते॥१८६॥

शुद्ध प्राप्त हो आत्मा, शुद्ध आत्मा ज्ञान।
मिले अशुद्ध आत्मा, अशुद्ध आत्म अज्ञान॥६.६.१८६॥

शुद्ध आत्मा को जानने वाला जीव शुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है और अशुद्ध आत्मा को जानने वाला जीव अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है।

One who perceives the pure self attains the pure self. One who perceives the impure self attains only the impure self.

अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दोपुण्णपावजोगेसु।
दंसणणाणम्हि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि॥१८७॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा।
ण वि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं॥१८८॥
अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अप्पा।
लहदि अचिरेण अप्पणमेव सो कम्मपविमुक्कं॥१८९॥

आत्मानमात्मना रुन्धवा द्विपुण्यपापयोगयोः।
दर्शनज्ञाने स्थितः इच्छाविरतः चान्यस्मिन्॥१८७॥
यः सर्वसङ्गमुक्तो ध्यायत्यात्मानमात्मनात्मा।
नापि कर्म नोकर्म चेतयति चिन्तयत्येकत्वम्॥१८८॥
आत्मानं ध्यायन् दर्शनज्ञानमयोऽनन्यमयः।
लभतेऽचिरेणात्मानमेव स कर्मप्रविमुक्तम्॥१८९॥

रोके आत्म आत्म से, पाप पुण्य का योग।
स्थित दर्शन ज्ञान में, इच्छा का नहीं रोग॥६.७.१८७॥
सब इच्छाओं से रहित, आत्मा का ही ध्यान।
कर्म नोकर्म ध्यावे नहीं, चित्त में एकत्व ज्ञान॥६.८.१८८॥
दर्शन ज्ञान अनन्यमय, आत्म में ही ध्यान।
अल्पकाल मुक्ति मिले, आत्म का ही ज्ञान॥६.९.१८९॥

पाप-पुण्य योग को रोककर, सम्यकदर्शन और ज्ञान में स्थित होकर, अन्य में इच्छा न रखते हुए, जो आत्मा सभी संबंधों से मुक्त होकर स्वयं को ही स्वयं में ध्याता है, न कर्म और नोकर्म का चिंतन करता है, केवल आत्मैक्य का अनुभव करता है—वह आत्मा, जो दर्शन और ज्ञानमय है, शीघ्र ही कर्मों से मुक्त होकर आत्मा को प्राप्त करता है।

By restraining the self from virtuous and sinful activities, remaining firm in right faith and knowledge, and free from worldly desires, the soul that meditates on itself without contemplating karma or quasi-karma, attains its pure self, free from karmic bondage, in a short span.

तेसिं हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरिसीहिं।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरयभावो य जोगो य॥१९०॥
हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स वि णिरोहो॥१९१॥
कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायदि णिरोहो।
णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होदि॥१९२॥

तेषां हेतवो भणिता अध्यवसानादि सर्वदर्शिभिः।
मिथ्यात्वमज्ञानमविरतभावश्च योगश्च॥१९०॥
हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स वि णिरोहो॥१९१॥
कर्मणोऽभावेन च नोकर्मणामपि जायते निरोधः।
नोकर्मनिरोधेन च संसारनिरोधनं भवति॥१९२॥

तेषां हेतवो भणिता अध्यवसानादि सर्वदर्शिभिः।
मिथ्यात्वमज्ञानमविरतभावश्च योगश्च॥१९०॥
हेतु का जब अभाव हो, आस्रव का निरोध।
आस्रव का अभाव हो, कर्मों का भी निरोध॥६.११.१९१॥
कर्मों का जब अभाव हो, नो कर्म नहीं आय।
नोकर्म का अभाव जब, भव पार हो जाय॥६.१२.१९२॥

सर्वज्ञों ने कहा है कि रागादि अध्यवसान के चार कारण—मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति और योग हैं। जब ये चार कारण नहीं रहते तब ज्ञानियों में नियम से आस्रव का निरोध होता है। आस्रव नहीं होने से कर्मों का भी नाश होता है। और जब कर्मों का अभाव होता है तब नोकर्मों का भी नाश हो जाता है। नोकर्मों का भी नाश हो जाने से संसार का अंत होता है।

Omniscients have declared that the causes of influx like attachment etc. are wrong belief, ignorance, non-restraint and activity. With the absence of these causes, influx ceases. With the absence of influx, bondage of karma ends. With no karma left, quasi-karmas also end, and with that, the cycle of transmigration ends.

7 निर्जरा अधिकार

उवभोगमिंदियेहिं दव्वाणमचेदणाणमिदराणं।
जं कुणदि सम्मदिट्ठि तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं॥१९३॥

उपभोगमिन्द्रियैः द्रव्याणामचेतनानामितर्षाम्।
यत्करोति सम्यग्दृष्टिः तत्सर्व निर्जरानिमित्तम्॥१९३॥

सम्यग्दृष्टि जीव के, इन्द्रियों का योग।
निर्जरा का निमित्त है, द्रव्यों का उपभोग॥७.१.१९३॥

सम्यग्दृष्टि जीव जो इंद्रियों के द्वारा अचेतन तथा चेतन द्रव्यों का उपभोग करता है वह सर्व निर्जरा का निमित्त है।

Whatever the right believer does through senses by enjoying material or immaterial objects becomes the cause of nirjara (shedding of karma).

दव्वे उवभुंजंते णियमा जायादि सुहं व दुक्खं वा।
तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेदेदि अध णिज्जरं जादि॥१९४॥

द्रव्ये उपभुज्यन्ते नियमात् जायते सुखं वा दुःखं वा।
तत् सुखदुःखमुदितं वेदयते अथ निज्यरः जायते॥१९४॥

वस्तु भोग उत्पन्न करे, सुख या दुख का भाव।
निर्जरा सम्यग्दृष्टि को, रहता बंध अभाव॥७.२.१९४॥

वस्तु भोगने में आने पर सुख या दुख नियम से उत्पन्न होता है और सुख दुख का अनुभव करता है लेकिन सम्यग्दृष्टि के बंध का अभाव होने के कारण निर्जरा होती है।

When a right believer enjoys an object, pleasure or pain may arise naturally, but due to absence of bondage, it leads to nirjara (shedding of karma).

जह विसमुवभुंजंतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवय दि।
पोग्गलकम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेव बज्झदे णाणी॥१९५॥

यथा विषमुपभुञ्जानो वैद्यः पुरुषो न मरणमुपयाति।
पुद्गलकर्मण उदयं तथा भुङ्क्ते नैव बध्यते ज्ञानी॥१९५॥

वैद्य विष को भोगता, मरण कभी ना होत।
ज्ञानी उदय को भोगता, ना बंधन का स्त्रोत॥७.३.१९५॥

जिस प्रकार वैद्य विष को भोगता हुआ भी मरण को प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष पुद्गलकर्म के उदय को भोगता है तथापि बँधता नहीं है।

Just as a physician consumes poison but does not die, similarly the knower experiences fruition of karmas but does not get bound.

जह मज्जं पिबमाणो अरदीभावेण मज्जदि ण पुरिसो।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव॥१९६॥

यथा मद्यं पिबन् अरतिभीवेन माद्यति न पुरुषः।
द्रव्योपभोगेऽरतो ज्ञान्यपि न बध्यते तथैव॥१९६॥

मदिरा पान नशा नहीं, पुरुष हो अरतिभाव।
ज्ञानी भी बंधता नहीं, जब वैराग्य हो भाव॥७.४.१९६॥

जैसे कोई पुरुष मदिरा को अरतिभाव से पीता हुआ मतवाला नहीं होता, इसी प्रकार ज्ञानी भी द्रव्य के उपभोग के प्रति वैराग्यभाव वर्तता हुआ बंध को प्राप्त नहीं होता।

Just as a man does not get intoxicated if he drinks wine with detachment, similarly a knower does not get bound when consuming material things with dispassion.

सेवंतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो कोई।
पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि ॥१९७॥

सेवमानोऽपि न सेवते असेवमानोऽपि सेवकः कश्चित्।
प्रकरणचेष्टा कस्यापि न च प्राकरण इति स भवति॥१९७॥

सेवन पर सेवन नहीं, करे नहीं पर नाम |
काम और कोई करे, मालिक हो बदनाम॥७.५.१९७॥

कोई तो विषयों का सेवन करता हुआ भी वास्तव में सेवन नहीं करता और कोई बिना सेवन किए भी सेवन करने वाला कहलाता है। जैसे कोई क्रिया किसी अन्य के द्वारा हो, फिर भी उसका नाम किसी और पर आ जाता है।

One may seem to indulge in pleasures but is not truly indulging, and another may not indulge yet is seen as indulger. Like actions done by someone, but blame goes to another.

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं।
ण दु मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को॥१९८॥

उदयविपाको विविधः कर्मणां वर्णितो जिनवरैः।
न तु ते मम स्वभावाः ज्ञायकभावस्त्वहमेकः॥१९८॥

कर्मों के हैं अनेक फल, वो मेरे न स्वभाव।
जिनेन्द्र देवे ने कहा, मै सिर्फ ज्ञायकभाव॥७.६.१९८॥

जिनेन्द्र भगवान ने कहा कि कर्मों के अनेक प्रकार के फल होते हैं, किन्तु वे आत्मा का स्वभाव नहीं हैं। आत्मा तो केवल एक ज्ञायक भाव है।

Jinendra explained that karmas have many kinds of results, but they are not my true nature. My only nature is of knowing.

पोग्गलकम्मं रागो तस्स विवागोदओ हवदि एसो।
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो हु अहमेक्को॥१९९॥

पुद्गलकर्म रागस्तस्य विपाकोदयो भवति एषः।
न त्वेष मम भावो ज्ञायकभावः खल्वहमेकः॥१९९॥

राग भी पुद्गल कर्म है, मेरा नहीं है भाव।
कर्मफल से होय उदय, मै तो ज्ञायकभाव॥७.७.१९९॥

राग पुद्गल कर्म है, उसका फलस्वरूप उदय होता है, यह मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा स्वभाव तो केवल ज्ञायकभाव है।

Attachment (raga) is a form of karmic matter; its fruition arises accordingly, but it is not my nature. I am only the knowing self.

एवं सम्मद्दिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणगसहावं।
उदयं कम्मविवागं च मुयदि तच्चं वियाणंतो॥२००॥

एवं सम्यग्दृष्टिः आत्मानं जानाति ज्ञायकस्वभावम्।
उदयं कर्मविपाकं च मुञ्चति तत्त्वं विजानन्॥२००॥

सम्यग्दृष्टि यह जानता, मैं ज्ञायकस्वभाव।
कर्मफल का उदय नहीं, छोड़ो पर के भाव॥७.८.२००॥

इस प्रकार सम्यग्दृष्टि आत्मा को ज्ञायकस्वभाव जानता है और कर्मफल के उदय को तत्व से जानकर छोड़ देता है।

Thus, the right believer knows the soul as the knowing self and, recognizing karmic fruition as external, discards it.

परमाणुमित्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पणयं तु सव्वागमधरो वि॥२०१॥
अप्पणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठि जीवाजीवे अयाणंतो॥२०२॥

परमाणुमात्रमपि खलु रागादीनां तु विद्यते यस्य।
नापि स जानात्यात्मानां तु सर्वागमधरोऽपि॥२०१॥
आत्मानमजानन् अनात्मानं चापि सोऽजानन्।
कथं भवति सम्यग्दृष्टिर्जीवाजीवावजानन्॥२०२॥

राग मात्र हो परम अनु, आत्मा नहीं विचार।
सर्वागम हो ज्ञात भी, वह न हो सत्कार॥७.९.२०१॥
आत्म को जानता जो नहीं, अनात्मा भी अनजान।
जीव अजीव का ज्ञान नहीं, सम्यक्त्व कहाँ पहचान॥७.१०.२०२॥

जिस जीव में रागादि भावों का लेशमात्र भी विद्यमान है, वह चाहे समस्त आगम का ज्ञाता ही क्यों न हो, आत्मा को नहीं जानता। जो आत्मा को नहीं जानता, वह अनात्मा को भी नहीं जानता। जो जीव और अजीव दोनों को नहीं जानता, वह सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता।

Even if one possesses knowledge of all scriptures, but has even the slightest attachment, he does not know the Self. One who neither knows the soul nor the non-soul cannot be a right believer.

आदम्हि दव्वभावे अपदे मोत्तूण गिण्ह तह णियदं।
थिरमेगमिमं भावं उवलब्भंतं सहावेण॥२०३॥

आत्मनि द्रव्यभावानपदानि मुक्त्वा गृहाण तथा नियतम्।
स्थिरमेकमिमं भावमुपलभ्यमानं स्वभावेन॥२०३॥

छोड़ अस्थाई भाव को, ग्रहण स्थिर कर भाव।
नित्य, एक है निश्चय से, आत्मा मुक्त स्वभाव॥७.११.२०३॥

आत्मा के अस्थाई द्रव्यभावों को छोड़कर, जो एक, स्थिर और निश्चित भाव है, उसे आत्मा के स्वभाव से जैसा है वैसा ही ग्रहण करना चाहिए।

Renounce transient modes of the soul and grasp its definite, steady and singular nature, which is realized through its own essence.

आभिणिसुदोधिमणकेवलं च तं होदि एक्कमेव पदं।
सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि॥२०४॥

आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलं च तद्भवत्येकमेव पदम्।
स एष परमार्थो यं लब्धवा निर्वृत्तिं याति॥२०४॥

मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय, या हो केवलज्ञान।
मिले तो मुक्त हो आत्मा, परम अर्थ को जान॥७.१२.२०४॥

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान—ये सभी एक ही ज्ञानपद के भिन्न-भिन्न रूप हैं। यही वह परम तत्व है, जिसे प्राप्त कर आत्मा मोक्ष को प्राप्त करती है।

All five—sensory, scriptural, clairvoyant, telepathic and omniscient knowledge—are one path of realization; attaining it, the soul reaches liberation.

णाणगुणेण विहीणा एदं तु पदं बहू वि ण लहंते।
तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं॥२०५॥

ज्ञानगुणेण विहीना एतत् पदं बहवोऽपि न लभन्ते।
तत् गृहाण निश्चितमेतत् यदि इच्छसि कर्मपरिमोक्षम्॥२०५॥

ज्ञानविहीन जीव अगर, करता कर्म हजार।
मुक्ति पद मिलता नहीं, ज्ञान ही आधार॥७.१३.२०५॥

ज्ञानगुण से रहित अनेक जीव यह मोक्षपद प्राप्त नहीं कर पाते। यदि तू कर्म से मुक्त होना चाहता है तो इस निश्चित ज्ञान को ही ग्रहण कर।

Even after performing countless acts, those devoid of knowledge do not attain liberation. If you wish to be free from karma, firmly grasp knowledge.

एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि।
एदेण होहि तुह उत्तमं सोक्खं॥२०६॥

एतस्मिन् रतः नित्यं सन्तुष्टो भव नित्यमेतस्मिन्।
एतेन भवतु ते उत्तमं सौख्यम्॥२०६॥

नित्य रुचि इस ज्ञान में, तुष्ट सदा ही होय।
तृप्ति मिले हर पल तुझे, उत्तम सुख में खोय॥७.१४.२०६॥

हे भव्य प्राणी, तू इस ज्ञान में सदा रमणीय भाव रख, इसमें निरंतर संतुष्ट हो। इसी से तुझे उत्तम सुख प्राप्त होगा।

Always delight in this knowledge, remain ever content in it — this alone shall grant you the highest bliss.

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं।
अप्पाणमप्पणो परिगहं तु णियदं वियाणंतो॥२०७॥

को नाम भणेद् बुधः परद्रव्यं ममेदं भवति द्रव्यं।
आत्मानमात्मनः परिग्रहं तु नियतं विजानन्॥२०७॥

जो जाने निज आत्म को, स्व का परिग्रह जान।
पर को अपना क्यूं कहे, ज्ञानी का यह ज्ञान॥७.१५.२०७॥

अपने आत्मा को ही निश्चित रूप से अपना परिग्रह जानने वाला ज्ञानी भला किसी परद्रव्य को "यह मेरा है" कैसे कह सकता है?

The wise, knowing soul itself to be its only true possession, would never say of another's object: "This is mine."

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।
णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ॥२०८॥

मम परिग्रहो यदि ततोऽहमजीवतां तुगच्छेयम्।
ज्ञातैवाहं यस्मात्तस्नान्न परिग्रहो मम॥२०८॥

पर द्रव्य मेरा अगर, अजीव तत्व परिणाम।
पर मै तो ज्ञाता सदा, पर का ना है काम॥७.१६.२०८॥

यदि पर द्रव्य मेरा हो तो मैं अजीव स्वरूप को प्राप्त हो जाऊँ, परन्तु मैं तो स्वभाव से ज्ञाता हूँ, इसलिए पर द्रव्य मेरा नहीं है।

If any external object were mine, I would become non-conscious matter. But as I am the knower, no external object can ever be mine.

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि हु ण परिग्गहो मज्झ॥२०९॥

छिद्यतां वा भिद्यतां वा नीयतां वाथवा यातु विप्रयलम्।
यस्मात्तस्मात् गच्छतु तथापि खलु न परिग्रहो मम॥२०९॥

छिने, भेदे या नष्ट हो, नियति को नहीं भाय।
या खोये किसी तरह, परिग्रह नहीं सुहाय॥७.१७.२०९॥

पर द्रव्य चाहे फट जाए, टूट जाए, कोई ले जाए, नष्ट हो जाए या किसी भी कारण से दूर हो जाए, फिर भी वह मेरा परिग्रह नहीं है।

Let it be torn, broken, taken away, or perish in any way — still, it is not my possession.

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे धम्मं।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि॥२१०॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छति धर्मम्।
अपरिग्रहस्तु धर्मस्य ज्ञायकस्तेन स भवति॥२१०॥

अनिच्छ ही अपरिग्रही, पुण्य भी नहीं चाह।
धर्म का परिग्रह नहीं, ज्ञायक ही है राह॥७.१८.२१०॥

इच्छारहित को ही अपरिग्रही कहा गया है और ज्ञानी पुण्य धर्म की भी इच्छा नहीं करता। वह धर्म का परिग्रही नहीं बल्कि केवल ज्ञाता होता है।

One who is without desire is called non-possessive. The wise one doesn't even wish for religion or merit; he remains merely the knower of Dharma, not its possessor.

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदि अधम्मं।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि॥२११॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छत्यधर्मम्।
अपरिग्रहोऽधर्मस्य ज्ञायकस्तेन स भवति॥२११॥

अनिच्छ ही अपरिग्रही, पाप भी नहीं चाह।
अधर्म का परिग्रह नहीं, ज्ञायक ही है राह॥७.१९.२११॥

इच्छारहित को ही अपरिग्रही कहा गया है और ज्ञानी अधर्म (पाप) की भी इच्छा नहीं करता। इसलिए वह अधर्म का भी परिग्रही नहीं है, केवल उसका ज्ञाता होता है।

One who is without desire is called non-possessive. The wise one does not desire even sin; he is not the possessor of adharma, only its knower.

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे असणं।
अपरिग्गहो दु असणस्य जाणगो तेण सो होदि॥२१२॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छत्यशनम्।
अपरिग्रस्त्वशनस्य ज्ञायकस्तेन स भवति॥२१२॥

अनिच्छ ही अपरिग्रही, भोजन की ना चाह।
भोजन का परिग्रह नहीं, ज्ञायक ही है राह॥७.२०.२१२॥

इच्छारहित को ही अपरिग्रही कहा गया है और ज्ञानी भोजन की भी इच्छा नहीं करता। इसलिए वह भोजन का भी परिग्रही नहीं है, केवल उसका ज्ञाता होता है।

One who is desireless is called non-possessive. The wise one does not even desire food; he is not the possessor of food, only its knower.

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे पाणं।
अपरिग्गहो दु पाणस्य जाणगो तेण सो होदि॥२१३॥

अपरिग्रहोऽनिच्छो भणितो ज्ञानी च नेच्छति पानम्।
अपरिग्रस्तु पानस्य ज्ञायकस्तेन स भवति॥२१३॥

अनिच्छ ही अपरिग्रही, पीने की ना चाह।
पीने का परिग्रह नहीं, ज्ञायक ही है राह॥७.२१.२१३॥

इच्छारहित को ही अपरिग्रही कहा गया है और ज्ञानी पीने की भी इच्छा नहीं करता, इसलिए वह पीने का भी परिग्रही नहीं है, केवल उसका ज्ञाता होता है।

One who is desireless is called non-possessive. The wise one does not even desire drink; he is not the possessor of drink, only its knower.

एमादिए दु विविहे सव्वे भावे य णेच्छदे णाणी।
जाणगभावो णियदो पीरालंबो दु सव्वत्थ॥२१४॥

एवमादिकांस्तु विविधान् सर्वान् भावांश्च नेच्छति ज्ञानी।ज्ञ
यकभावो नियतो निरालम्बस्तु सर्वत्र॥२१४॥

अनिच्छ ही अपरिग्रही, कुछ की भी ना चाह।
स्वतन्त्र वह सबसे रहे, ज्ञायक ही है राह॥७.२२.२१४॥

इसी तरह के अनेक भावों को ज्ञानी नहीं चाहता और सभी से स्वतन्त्र होकर वह निश्चित रूप से केवल ज्ञायक भाव ही है।

The wise does not desire any such states; he remains established in the state of pure knowledge, unattached to all.

उप्पण्णोदयभोगो वियोगबुद्धीए तस्स सो णिच्चं।
कंखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी॥२१५॥

उत्पन्नोदयभोगो वियोगबुद्धया तस्य स नित्यम्।
कांक्षामनीगतस्य च उदयस्य न करोति ज्ञानी॥२१५॥

वर्तमान में कर्म उदय, ज्ञानी बुद्धि वियोग।
भविष्य की इच्छा नहीं, कर्म का नहीं रोग॥७.२३.२१५॥

ज्ञानी के राग का अभाव होने से वर्तमान कर्म का उदय वियोगबुद्धि से होता है और वह भविष्य में कर्म के उदय की आकांक्षा नहीं करता है।

The fruition of present karma is always seen by the wise with detachment, and he does not long for future karmic fruition.

जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उभयं।
तं जाणगो दु णाणी उभयं पि ण कंखदि कयावि॥२१६॥

यो वेदयते वेद्यते समये समये विनश्यत्युभयम्।
तद्ज्ञायकस्तु ज्ञानी उभयमपि न कांक्षति कदापि॥२१६॥

वेदन और वेद्य भी, हर पल नष्ट हो भाव।
ये जान वांछित नहीं, ज्ञानी का स्वभाव॥७.२४.२१६॥

जो भाव वेदन करता है और जो भाव वेदित होता है, वे दोनों समय के साथ नष्ट हो जाते हैं। यह जानने वाला ज्ञानी उन दोनों की कभी भी आकांक्षा नहीं करता।

The experiencer and the experienced both perish with time; the wise, being the knower of this, never longs for either.

बंधुवभोगणिमित्ते अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स।
संसारदेहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो॥२१७॥

बन्धोपभोगनिमित्तेषु अध्यवसानोदयेषु ज्ञानिनः।
संसारदेहविषयेषु नैवोत्पद्यते रागः॥२१७॥

बंध उपभोग निमित्त से, उत्पन्न होय विचार।
ज्ञानी राग करता नहीं, देह हो या संसार॥७.२५.२१७॥

बंधन या उपभोग के कारण जो अध्यवसान रूपी भाव उत्पन्न होते हैं, उनमें भी ज्ञानी के भीतर संसार या देह विषयक राग उत्पन्न नहीं होता।

From causes like bondage or enjoyment, when worldly or bodily thoughts arise, the knower remains detached—no attachment is born in him.

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं॥२१८॥
अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा लोहं॥२१९॥

ज्ञानी रागप्रहायकः सर्वद्रव्येषु कर्ममध्यगतः।
नो लिप्यते रजसा तु कर्दममध्ये यथा कनकम्॥२१८॥
अज्ञानी पुनः रत्तः सर्वद्रव्येषु कर्ममध्यगतः।
लिप्यते कर्मरजसा तु कर्दममध्ये यथा लोहम्॥२१९॥

सर्व द्रव्य संग रहकर भी, ज्ञानी को ना राग।
कनक कीच में शुद्ध रहे, राग का हो त्याग॥७.२६.२१८॥
सर्व द्रव्य की संगत में, अज्ञानी को राग।
लोहा जैसे कीच में, जंग के लगते दाग॥७.२७.२१९॥

ज्ञानी जीव, सर्व द्रव्यों के मध्य रहते हुए भी राग का परित्याग कर देने से कर्मरूपी रज से लिप्त नहीं होता, जैसे कीचड़ में पड़ा हुआ सोना मलिन नहीं होता।
अज्ञानी जीव, सर्व द्रव्यों में राग करने के कारण कर्म के रज से लिप्त हो जाता है, जैसे कीचड़ में पड़ा लोहा मलिन और जंग खा जाता है।

Though surrounded by all substances, the knower remains unattached like gold in mud. But the ignorant, attached to all, gets stained like iron with rust.

भुंजंतस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे।
संखस्स सेदभावो ण वि सक्कदि किण्हगो कादुं॥२२०॥
तह णाणिस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे।
भुंजंतस्स वि णाणं ण सक्कमण्णाणदं णेदुं॥२२१॥
जइया स एव संखो सेदसहावं तयं पजहिदूण।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे॥२२२॥
तह णाणी वि हु जइया णाणसहावं तयं पजहिदूण।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे॥२२३॥

भुञ्जानस्यापि विविधानि सचित्ताचित्तमिश्रितानि द्रव्याणि।
शंखस्य श्वेतभावो नापि शक्यते कृष्णकः कर्तुम्॥२२०॥
तथा ज्ञानिनोऽपि विविधानि सचित्ताचित्तमिश्रितानि द्रव्याणि।
भुञ्जानस्यापि ज्ञानं न शक्यमज्ञानतां नेतुम्॥२२१॥
यदा स एव शंखः श्वेतस्वभावं तं प्रहाय।
गच्छेत्कृष्णभावं तदा शुक्लत्वं प्रजह्यात्॥२२२॥
तथा ज्ञानी अपि यदा ज्ञानस्वभावं तं प्रहाय।
अज्ञानेन परिणतः तदा अज्ञानतां गच्छेत्॥२२३॥

सचित अचित या मिश्र हो, पर द्रव्य का भोग।
शंख श्वेत बना रहे, कालापन ना रोग॥७.२८.२२०॥
ज्ञानी रहता ज्ञान में, अज्ञान का न रोग।
सचित अचित या मिश्र हो, पर द्रव्य का भोग॥७.२९.२२१
वही शंख यदि छोड़ दे, अपना श्वेत स्वभाव।
कालापन उसको मिले, श्वेत भाव विभाव॥७.३०.२२२॥
ज्ञानी वैसा जानिये, जब अपनाता अज्ञान।
तब वह अज्ञानी बनता, छोड़ चला जब ज्ञान॥७.३१.२२३॥

जैसे शंख सचित्त, अचित्त या मिश्रित परद्रव्यों का भोग करते हुए भी अपने श्वेत भाव को नहीं खोता, वैसे ही ज्ञानी भी परद्रव्यों के भोग में लिप्त होकर भी अपने ज्ञानस्वभाव को नहीं छोड़ता। परंतु जब वही शंख अपने श्वेत स्वभाव को छोड़ देता है, तब वह काला हो जाता है; उसी प्रकार जब ज्ञानी अपने ज्ञानस्वभाव को छोड़ देता है और अज्ञान में परिणत होता है, तब वह अज्ञानी बन जाता है।

Just as a conch shell, while coming into contact with sentient, insentient, or mixed external substances, does not lose its white nature, similarly, a wise person, even while engaging with external objects, does not abandon their essential nature of knowledge.

However, when that same conch loses its white nature, it turns black; in the same way, when a wise person abandons their nature of knowledge and transforms into ignorance, they become ignorant.

पुरिसो जह को वि इहं वित्तिणिमित्तं तु सेवदे रायं।
तो सो वि देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पाए॥२२४॥
एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं।
तो सो वि दे दि विविहे भोगे सुहुप्पाए॥२२५॥
जह पुणसो च्चिय पुरिसोवित्तिणिमित्तं णसेवदे रायं।
तो सो ण देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पाए॥२२६॥
एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थं सेवदे ण कम्मरयं।
तो सो ण देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पाए॥२२७॥

पुरुषो यथा कोऽपीह वृत्तिनिमित्तं तु सेवते राजानम्।
तत्सोऽपि ददाति राजा विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान्॥२२४॥
एवमेव जीवपुरुष: कर्मरज:सेवते सुखनिमित्तम्।
तत्तदपि ददाति कर्म विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान्॥२२५॥
यथा पुन: स एव पुरुषो वृत्तिनिमित्तं न सेवते राजानम्।
तत्सोऽपि न ददाति राजा विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान्॥२२६॥
एवमेव सम्यग्दृष्टि: विषयार्थंसेवते न कर्मरज:।
तत्तन्न ददाति कर्म विविधान् भोगान् सुखोत्पादकान्॥२२७॥

राजा की सेवा करे, ऐसे जन ही पाय।
तो राजा भी देत है, सुख भोग के उपाय॥७.३२.२२४॥
जो कर्म की सेवा करे, ऐसे जन ही पाय।
तो कर्म भी देता रहे, सुख भोग के उपाय॥७.३३.२२५॥
राजा की सेवा नहीं, ऐसे जन ना पाय।
तो नृप भी देता नहीं, सुख भोग के उपाय॥७.३४.२२६॥
कर्म रज की सेवा नहीं, ऐसे जन ना पाय।
तो कर्म भी देता नहीं, सुख भोग के उपाय॥७.३५.२२७॥

जैसे इस जगत में कोई भी पुरुष आजीविका के लिए राजा की सेवा करता है तो वह राजा भी उसे सुख उत्पन्त करने वाले अनेक प्रकार के भोग देता है, इसी प्रकार जीव पुरुष सुख के लिए कर्म रजत की सेवा करता है तो वह कर्म भी उसे सुख उत्पन्न करने वाले अनेक प्रकार के भोग देता है।

और जैसे ही वही पुरुष आजीविका के लिए राजा की सेवा नहीं करता तो वह राजा भी उसे सुख उत्पन्न करने वाले अनेक प्रकार के भोग नहीं देता इसी प्रकार सम्यक्दृष्टि विषय के लिए कर्मरज की सेवा नहीं करता तो कर्म भी उसे सुख उत्पन्न करने वाले अनेक प्रकार के सुख नहीं देता।

Just as, in this world, when a person serves a king for livelihood, the king grants him various pleasures that bring happiness, similarly, when the soul serves karmic matter (karma-rajat) for pleasure, karma too provides various enjoyments that give happiness.

And just as when that person no longer serves the king for livelihood, the king also ceases to grant him those pleasures, in the same way, when a person with right vision (samyak-drishti) no longer serves the karmic matter for sensual pleasures, karma too stops providing those various enjoyments that bring happiness.

समेमादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण।
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका॥२२८॥

सम्यग्दृष्टयो जीवा निश्शंका भवन्ति निर्भयास्तेन।
सप्तभयविप्रमुक्ता यस्मात्तस्मात्तु निश्शंकाः॥२२८॥

ना शंका ना भय रहे, हो सम्यग्दृष्टि जीव।
सात भय से रहित सदा ज्ञानी पक्की नींव॥७.३६.२२८॥

सम्यग्दृष्टि जीव को कोई शंका नहीं होती इसलिए वे निर्भय होते हैं।[SEP]क्योंकि वे सात प्रकार के भय (इहलोक, परलोक, वेदना, अरक्षा, अगुप्ति, मरण, आकस्मिक) से मुक्त होते हैं, इसलिए निःशंक रहते हैं।

A soul with right faith remains free of doubt and fear.[SEP]Being liberated from the seven kinds of fear, he remains unshaken from all sides.

जो चत्तारि वि पाए छिंददि ते कम्मबंध मोहकरे।
सो णिंस्संको चेदा सम्मादिट्ठि मुणेदव्वो॥२२९॥

यश्चतुरोऽपि पादान् छिनत्ति तान् कर्मबन्धमोहकरान्।
स निश्शङ्कश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः॥२२९॥

कर्मबंध होता नहीं, मिथ्यादि का अभाव।
सम्यग्दृष्टि निःशंक रहे, निर्जरा ही प्रभाव॥७.३७.२२९॥

जो सम्यग्दृष्टि चार कर्मबन्धकारक मोहक पायों (मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, योग) को छिन्न करता है, वह शंका रहित चेतन है और उसे ही सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

He who cuts off the four deluding causes of karmic bondage—false belief, ignorance, non-restraint, and activity—is doubt-free and is truly called a right believer (Samyagdrishti).

जो दु ण करेदि कंखं कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥२३०॥

यस्तु न करोति कांक्षां कर्मफलेषु तथा सर्वधर्मेषु।
स निष्कांक्षश्चेतयिता सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः॥२३०॥

ना फल की आशा करे, वस्तु धर्म ना चाह।
चेतन वो निष्कांक्ष कहे, सम्यग्दृष्टि की राह॥७.३८.२३०॥

जो चेतन जीव कर्मों के फलों की और समस्त धर्मों की इच्छा नहीं करता, वह निष्कांक्ष है और वही सम्यग्दृष्टि कहलाने योग्य है।

He who does not desire the fruits of karma nor has any longing for external religious practices is non-expectant, and such a conscious being should be known as a right believer (Samyagdrishti).

जो ण करेदि दुगुंछं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।
सो खलु णिविदिगिच्छो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥२३२॥

यो नो करोति जुगुप्सां चेतयिता सर्वेषामेव धर्माणाम्।
स खलु निर्विचिकित्सः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः॥२३२॥

जो ग्लानि करता नहीं, वस्तु धर्म स्वभाव।
सम्यग्दृष्टि जान उसे, निर्विचकित्स भाव॥७.३९.२३२॥

जो चेतन सभी द्रव्यों के धर्मों के प्रति ग्लानि या घृणा नहीं करता, वही निर्विचिकित्स कहलाता है और वह सम्यग्दृष्टि जानने योग्य है।

He who feels no aversion or disgust toward the inherent nature of any substance or its attributes is truly without doubt (Nirvichikitsa) and should be recognized as a right believer.

जो हवदिअसम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥२३२॥

यो भवति असम्मूढः चेतयिता सद्दृष्टिः सर्वभावेषु।
स खलु अमूढदृष्टिः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः॥२३२॥

सर्व भाव जब चेतन में, दृष्टि अमूढ यथार्थ।
सम्यग्दृष्टि जान उसे, ज्ञात सभी पदार्थ॥७.४०.२३२॥

जो चेतन सभी भावों में यथार्थ दृष्टि रखता है और किसी प्रकार की भ्रांति से रहित होता है, वही अमूढ़दृष्टि है, उसे ही सम्यग्दृष्टि समझना चाहिए।

One who is unwavering and rightly perceives all aspects of reality without confusion is truly undeluded and should be recognized as a right believer (Samyagdrishti).

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥२३३॥

यः सिद्धभक्तियुक्तः उपगूहनकस्तु सर्वधर्माणाम्।
स उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः॥२३३॥

जो चेतन सिद्ध भक्ति में, पर भाव से अज्ञान।
उपगूहनकारी वही, सम्यग्दृष्टि वो जान॥७.४१.२३३॥

जो चेतन सिद्धों की भक्ति से युक्त है और परधर्मों में आसक्त नहीं होता, वही समस्त धर्मों का आदर करने वाला होता है और उसे ही सम्यग्दृष्टि समझना चाहिए।

One who is devoted to the liberated souls (Siddhas) and reveres all true dharmas without attachment to alien beliefs is to be known as a right believer (Samyagdrishti).

उम्मग्गं गच्छंतं सगं पि मग्गे ठवेदि जो चेदा।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥२३४॥

उन्मार्गं गच्छन्तं स्वकमपि मार्गे स्थापयति यश्चेतयिता।
स स्थितिकरणयुक्तः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः॥२३४॥

चेतन हटता मार्ग से, पुन: आत्मा स्थान।
स्थितिकरणयुक्त है वही, सम्यग्दृष्टि वो जान॥७.४२.२३४॥

जो चेतन आत्मा उन्मार्ग की ओर चला भी जाता है, किंतु पुनः उसे मार्ग में स्थिर करता है, उसे स्थितिकरणयुक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

One who, even if deviating from the right path, restores himself back to the true path with awareness is to be known as a right believer endowed with stability.

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हं साहूण मोक्खमग्गम्हि।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिटिठी मुणेदव्वो॥२३५॥

यः करोति वत्सलत्वं त्रयाणां साधूनां मोक्षमार्गे।
स वत्सलभावयुतः सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः॥२३५॥

जो करता वात्सल्य है, त्रिरत्न में ध्यान।
वत्सलभाव युक्त वही, सम्यग्दृष्टि जान॥७.४३.२३५॥

जो मोक्षमार्ग में स्थित त्रिरत्न – सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान और सम्यकचारित्र – में स्थित साधुओं के प्रति वात्सल्य करता है, वह वत्सलभाव से युक्त सम्यग्दृष्टि माना जाता है।

One who possesses loving devotion towards the three jewels—right faith, knowledge, and conduct—as embodied in the saints on the path of liberation, is to be known as a right believer with a loving nature.

विज्जारहमारुढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो॥२३६॥

विद्यारथमारूढः मनोरथपथेषु भ्रमति यश्चेतयिता।
स जिनज्ञानप्रभावी सम्यग्दृष्टिर्ज्ञातव्यः॥२३६॥

विद्या रथ पर चढ़ करे,सदा भ्रमण बस ज्ञान।
जिनेन्द्र की प्रभावना, सम्यग्दृष्टि जान॥७.४४.२३६॥

जो चेतन विद्या रूपी रथ पर आरूढ़ होकर ज्ञान मार्ग में भ्रमण करता है, वह जिनेन्द्र भगवान के ज्ञान की प्रभावना करने वाला सम्यग्दृष्टि माना जाता है।

The one who, mounted on the chariot of knowledge, journeys along the path of noble aspirations and spreads the influence of the Jinas' wisdom, is to be recognized as a right believer inspired by the light of true knowledge.

8 बंध अधिकार

जह णाम को वि पुरिसो णेहब्भत्तो दु रेणुबहुलम्मि।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेदि सत्थेहिं वायामं॥२३७॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ।
सचित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं॥२३८॥
उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतेज्ज हु किंपच्चयगो दु रयबंधो॥२३९॥
जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं॥२४०॥
एवं मिच्छादिट्ठी वट्टतो बहुविहासु चिट्ठासु।
रागादी उवओगे कुव्वंतो लिप्पदि रएण॥२४१॥

यथा नाम कोऽपि पुरुषः स्नेहाभ्यक्तस्तु रेणुबहुले।
स्थाने स्थित्वा च करोति शस्त्रैर्व्यायामम्॥२३७॥
छिनत्ति भिनत्ति च तथा ताली-तल-कदलि-वंशपिण्डीन्।
सचित्ताचित्तानां करोति द्रव्याणामुपघातम्॥२३८॥
उपघातं कुर्वतः तस्य नानाविधैः करणैः।
निश्चयतः चिन्त्यतां खलु किंप्रत्ययिकस्तु रजोबन्धः॥२३९॥
यः स तु स्नेहभावस्तस्मिन्नरे तेन तस्य रजोबन्धः।
निश्चयतो विज्ञेयं न कायचेष्टाभिः शेषाभिः॥२४०॥
एवं मिथ्यादृष्टिर्वर्तमानो बहुविधासु चेष्टासु।
रागाद्युपयोगे कुर्वाणो लिप्यते रजसा॥२४१॥

जिस तरह जब पुरुष करे, चुपड़े तेल तमाम।
स्थान जब हो धूल भरा, शस्त्रों से व्यायाम॥८.१.२३७॥
छेदे भेदे वृक्ष कई, ताड़ बाँस तमाल।
सचित्त अचित्त द्रव्य कई, घातक उसकी चाल॥८.२.२३८ ॥
पुरुष करे उपघात वह, नाना विधि प्रकार।
धूल बंधती किस तरह, निश्चय से कर विचार॥८.३.२३९॥
चिकनाहट ही कारण है, रज बंध का तु जान।
शारीरिक चेष्टा नहीं, निश्चय से पहचान॥८.४.२४०॥
मिथ्यादृष्टि उसी तरह, नाना विधि प्रकार।
कारण है रागादि ही , कर्म बंधन विचार॥८.५.२४१॥

जैसे कोई पुरुष तेल आदि चिकने पदार्थ लगाकर और बहुत से धूल वाले स्थान में रहकर शस्त्रों के द्वारा व्यायाम करता है। तथा ताड़, तमाल, केल, बाँस, अशोक इत्यादि वृक्षों को छेदता है भेदता है, सचित्त तथा अचित्त आदि द्रव्यों का उपघात करता है; इस प्रकार नाना प्रकार के करणों द्वारा उपघात करते हुए उस पुरुष के रज का बन्ध वास्तव में किस कारण से होता है, यह निश्चय से विचार करो। उस पुरुष में जो वह तेल आदि की चिकनाहट है उससे उसे रज का बंध होता है, ऐसा निश्चय से जानना चाहिए, शेष शारीरिक चेष्टाओं से नहीं होता।

इसी प्रकार बहुत प्रकार की चेष्टाओं में वर्तता हुआ मिथ्यादृष्टि उपयोग में रागादि भावों को करता हुआ कर्मरुप रज से लिप्त होता है, बंधता है।

**Even as a man, anointed with oil, works with weapons in a place full of dust;
He cuts and breaks trees—palms, bamboos, bananas—and injures both sentient and insentient substances;
The cause of his dust-covered state must be understood not merely by his acts,
But by the oiliness—the stickiness—that causes the dust to cling.**

**In the same way, the deluded soul engaged in various actions becomes bound by karmic dust not because of the actions themselves,
But due to internal passions like attachment—know this truly.**

जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वम्हि अवणिदे संते।
रेणुबहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहिं वायामं॥२४२॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ।
सचित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं॥२४३॥
उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतेज्ज हु किंपच्चयगो णु रयबंधो॥२४४॥
जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं॥२४५॥
एवं मिच्छादिट्ठी वट्टतो बहुविहेसु जोगेसु।
अकरंतो उवओगे रागादी ण लिप्पदि रएण॥२४६॥

यथा पुनः स एव नरः स्नेहे सर्वस्मिन्नपनीते सति।
रेणुबहुले स्थाने करोति शस्त्रैर्व्यायामम्॥२४२॥
छिनत्ति भिनत्ति च तथा ताली-तल-कदली-वंशपिण्डीन्।
सचित्ताचित्तानां करोति द्रव्याणामुपघातम्॥२४३॥
उपघातं कुर्वतः तस्य नानाविधैः करणैः।
निश्चयतः चिन्त्यतां खलु किंप्रत्ययिको न रजोबन्धः॥२४४॥
यः स तु स्नेहभावस्तस्मिन्नरे तेन तस्य रजोबन्धः।
निश्चयतः विज्ञेयं न कायचेष्टाभिः शेषाभिः॥२४५॥
एवं सम्यग्दृष्टिर्वर्तमानो बहुविधेषु योगेषु।
अकुर्वन्नुपयोगे रागादीन् न लिप्यते रजसा॥२४६॥

जिस तरह जब पुरुष करे, चुपड़े तेल तमाम।
स्थान जब हो धूल भरा, शस्त्रों से व्यायाम॥८.६.२४२॥
छेदे भेदे वृक्ष कई, ताड़ बाँस तमाल।
सचित्त अचित्त द्रव्य कई, घातक उसकी चाल॥८.७.२४३॥
पुरुष करे उपघात वह , नाना विधि प्रकार।
धूल बंधती क्यूँ नहीं, निश्चय से कर विचार॥८.८.२४४॥
चिकनाहट ही कारण है, रज बंध का तु जान।
शारीरिक चेष्टा नहीं, निश्चय से पहचान॥८.९.२४५॥
सम्यग्दृष्टि उसी तरह, नाना विधि प्रकार।
रागादि जब नहीं रहे, कर्म ना बंध विचार॥८.१०.२४६॥

और जैसे वही पुरुष तेल आदि चिकने पदार्थ न लगाकर और बहुत से धूल वाले स्थान में रहकर शस्त्रों के द्वारा व्यायाम करता है। तथा ताड़, तमाल, केल, बाँस, अशोक इत्यादि वृक्षों को छेदता है भेदता है, सचित्त तथा अचित्त आदि द्रव्यों का उपघात करता है; इस प्रकार नाना प्रकार के करणों द्वारा उपघात करते हुए उस पुरुष के रज का बन्ध वास्तव में किस कारण से नही होता है, यह निश्चय से विचार करो। उस पुरुष को जो वह तेल आदि की चिकनाहट है उससे उसे रज का बंध होता है, ऐसा निश्चय से जानना चाहिए, शेष शारीरिक चेष्टाओं से नहीं होता।

इसी प्रकार बहुत प्रकार की योगों में वर्तता हुआ सम्यग्दृष्टि उपयोग में रागादि भावों को न करता हुआ कर्मरुप रज से लिप्त नहीं होता है, नहीं बंधता है।

Even when a man, devoid of all oily substances, Performs weapon-exercises in a place full of dust, And cuts and breaks various trees—palms, bananas, bamboos—Harming both sentient and insentient beings, One should reflect with discernment—Does the dust stick to him just by action? It is not physical effort, but oiliness that causes dust to cling. In the same way, a Right Visioned soul, Though engaged in many activities, Remains unattached to karmic dust, Because he does not engage in passions like attachment.

जो मण्णदि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो॥२४७॥

यो मन्यते हिनस्मि च हिंस्ये च परैः सत्त्वैः।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञानी अतो तु विपरीतः॥२४७॥

जो माने मैं मारता, "पर" ले मेरी जान।
दोनो ही अज्ञान है, उल्टा माने ज्ञान॥८.११.२४७॥

जो यह मानता है कि मैं पर जीवों को मारता हूँ और पर जीव मुझे मारते हैं – वह मूढ़ है, अज्ञानी है।[SEP]इसके विपरीत जो ऐसा नहीं मानता, वही ज्ञानी है।

One who believes that "I kill other beings" or "other beings kill me" is deluded and ignorant. In contrast, the one who does not hold such a belief is truly wise.

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कदं तेसिं॥२४८॥
आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं ण हरंति तुहं कह ते मरणं कदं तेहिं॥२४९॥

आयुषः क्षयेण मरणं प्राणिनां जिनवरैः प्रणीतम्।
आयुः न हरसि त्वं कथं तेषां मरणं कथं तवैः॥२४८॥
आयुषः क्षयेण मरणं प्राणिनां जिनवरैः प्रणीतम्।
आयुः न हरन्ति यदि कथं तेषां मरणं कथं तैः॥२४९॥

आयुकर्म से जीव मरण, जिनवर का यह ज्ञान।
आयु तू ना हर सकता, कैसे मारा जान?॥८.१२.२४८॥
आयुकर्म से जीव मरण, जिनवर का यह ज्ञान।
हर सकता कोई नहीं, तेरी आयु तु जान?॥८.१३.२४९॥

जीवों का मरण आयु कर्म के क्षय से होता है ऐसा जिनवरों ने कहा है;तू पर जीवों के आयु कर्म को तो हरता नहीं, तो तूने उनका मरण कैसे किया?

Death of beings occurs due to the exhaustion of their lifespan karma — this is what the Jinas have declared. You do not take away their lifespan; how then can you say you caused their death?

जो मण्णदि जीवेमि य जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो॥२५०॥

यो मन्यते जीवयामि च जीव्ये च परैः सत्तवैः।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीतः॥२५०॥

कोई जीवन दे मुझे, मै जिलाउँ जान।
अज्ञानी वो जीव है, उल्टा माने ज्ञान॥८.१४.२५०॥

जो जीव यह मानता है कि मैं पर जीवों को जिलाता हूँ या पर जीव मुझे जिलाते हैं, वह अज्ञानी हैं और इससे विपरीत जो ऐसा नहीं मानता वह ज्ञानी हैं।

One who believes, "I give life to others, or others give life to me,"[SEP]That being is deluded and ignorant — the wise think the opposite.

आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउंण च देसि तुमं कहं तए जीविदं कदं तेसिं॥२५१॥
आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण दिंति तुहं कहं णु ते जीविदं कदं तेहिं॥२५२॥

आयुरुदयेन जीवति जीव एवं भणन्ति सर्वज्ञाः।
आयुश्च न ददासि त्वं कथं त्वया जीवितं कृतं तेषाम्॥२५१॥
आयुरुदयेन जीवति जीव एवं भणन्ति सर्वज्ञाः।
आयुश्च न ददति तव कथं नु ते जीवितं कृतं तैः॥२५२॥

जीवायुकर्म उदय से, जिनवर का यह ज्ञान।
आयु तु ना दे सकता नहीं, कैसे जीवन दान?॥८.१५.२५१॥
जीवायुकर्म उदय से, जिनवर का यह ज्ञान।
'पर' आयुकर्म दे न सके, कैसे जीवन दान?॥८.१६.२५२॥

जीव आयु कर्म के उदय से जीता है – ऐसा सर्वज्ञ देव कहते हैं; तू किसी को आयु नहीं देता, तो फिर तू उसे जीवन कैसे दे सकता है?

A being lives due to the rise of lifespan karma — so declare the Omniscient Ones. If you do not give lifespan to others, then how can you be said to have given them life?
A being lives due to the rise of lifespan karma — so declare the Omniscient Ones. And if others do not give you lifespan, then how can it be said that they gave you life?

जो अप्पणा दु मण्णदि दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो॥२५३॥

य आत्मना तु मन्यते दु:खितसुखितान् करो मि सत्त्वानिति।
स मूढोऽज्ञानी ज्ञान्यतस्तु विपरीत:॥२५३॥

दुख सुख दे कोई मुझे, या मै लेता मान।
अज्ञानी वो जीव है, उल्टा माने ज्ञान॥८.१७.२५३॥

जो यह मानता है कि मैं जीवों को दुखी या सुखी करता हूँ, वह अज्ञानी है; और जो इससे विपरीत मानता है, वही ज्ञानी है।

One who believes that he causes happiness or suffering to other beings is deluded and ignorant; he who holds the opposite view is the true knower.

कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे।
कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिदसुहिदा कह कया ते॥२५४॥
कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे।
कम्मं च ण दिंति तुहं कदोसि कहं दुक्खिदो तेहिं॥२५५॥
कम्मोदएण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे।
कम्मं च ण दिंति तुहं कह तं सुहिदो कदो तेहिं॥२५६॥

कर्मोदयेन जीवा दु:खितसुखिता भवन्ति यदि सर्वे।
कर्म च न ददासि त्वं खितसुखिता: कथं कृतास्ते॥२५४॥
कर्मोदयेन जीवा दु:खितसुखिता भवन्ति यदि सर्वे।
कर्म च न ददति तव कृतोऽसि कथं दु:खितस्तै:॥२५५॥
कर्मोदयेन जीवा दु:खितसुखिता भवन्ति यदि सर्वे।
कर्म च न ददति तव कथं त्वं सुखित: कृतस्तै:॥२५६॥

कर्म उदय से जीव सभी , दुखी सुखी सब होय।
दुखी सुखी कैसे किया?, कर्म तू नहीं देय॥८.१८.२५४॥
कर्म उदय से जीव सभी, दुखी सुखी सब होय।
दुखी तुझे कैसे किया?, कर्म वो नहीं देय॥८.१९.२५५॥
कर्म उदय से जीव सभी, दुखी सुखी सब होय।
सुखी तुझे कैसे किया?, कर्म नहीं वो देय॥८.२०.२५६॥

यदि सभी जीव अपने कर्म के उदय से सुखी या दुखी होते हैं,
और तुम उन्हें वह कर्म नहीं देते, तो तुमने उन्हें सुखी या दुखी कैसे किया?
यदि सभी जीव अपने कर्म के उदय से सुखी या दुखी होते हैं, और वे तुम्हें वह कर्म नहीं देते, तो उन्होंने तुम्हें दुखी कैसे किया?

यदि सभी जीव अपने कर्म के उदय से सुखी या दुखी होते हैं, और वे तुम्हें वह कर्म नहीं देते, तो उन्होंने तुम्हें सुखी कैसे किया?

If all beings become happy or miserable due to the rise of their own karma, and you do not give them that karma, how could you have made them happy or miserable?
If all beings become happy or miserable due to the rise of their own karma, and they do not give you that karma, how could they have made *you* miserable?
If all beings become happy or miserable due to the rise of their own karma, and they do not give you that karma, how could they have made *you* happy?

जो मरदि जो य दुहिदो जायदि कम्मोदएण सो सव्वो।
तम्हा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा॥२५७॥
जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदएण चेव खलु।
तम्हा ण मारिदो णो दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा॥२५८॥

यो म्रियते यश्च दु:खितो जायते कर्मोदयेन स सर्वः।
तस्मात्तु मारितस्ते दु:खितश्चेति न खलु मिथ्या॥२५७॥
यो न म्रियते न च दु:खितः सोऽपि च कर्मोदयेन चैव खलु।
तस्मान्न मारितो नो दु:खितश्चेति न खलु मिथ्या॥२५८॥

मरता है या हो दुखी, कर्म उदय से होय।
मैने मारा; दुख दिया, मिथ्या है क्यूँ रोय?॥८.२१.२५७॥
ना मरता ना हो दुखी, कर्म उदय से होय।
मै न मारा न दुख दिया, मिथ्या है क्यूँ रोय?॥८.२२.२५८॥

जो मरता है और जो दुखी होता है वह सब कर्मोदय से होता है; इसलिए 'मैने मारा, मैने दुखी किया' ऐसा तेरा सोचना क्या वास्तव में मिथ्या नहीं है?
और जो न मरता है और न दु:खी होता है वह भी वास्तव में कर्मोदय से ही होता है; इसलिए 'मैंने नहीं मारा, मैंने दुखी नहीं किया' ऐसा तेरा सोचना क्या वास्तव में मिथ्या नहीं है?

He who dies or suffers – it all happens due to the rise of karma; So if you say, "I killed, I caused suffering," is that not truly false?
And he who does not die nor suffer – that too is due to karma's rise; So if you say, "I did not kill, I did not cause suffering," is that not also truly false?

एसा दु जा मदी दे दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्ते त्ति।
एसा दे मूढमदी सुहासुहं बंधदे कम्मं॥२५९॥

एषा तु या मतिस्ते दु:खित सुखितान् करोमि सत्त्वानिति।
एषा ते मूढमतिः शुभाशुभं बध्नाति कर्म॥२५९॥

अन्य जीव को दुखी सुखी, 'कर्ता' मति यह मान।
शुभ अशुभ कर्म बांधती, मूढ बुद्धि यह जान॥८.२३.२५९॥

तेरी यह जो बुद्धि है कि मैं जीवों को दुखी सुखी करता हूँ – यही तेरी मूढ़बुद्धि ही शुभ और अशुभ कर्म को बाँधती है।

This very notion – that "I make others happy or miserable" –Is your deluded belief, and it is what binds you to auspicious and inauspicious karma.

दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एवमज्झवसिदं ते।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि॥२६०॥
मारिमि जीवावेमि य सत्ते जं एवमज्झवसिदं ते।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स व बंधगं होदि॥२६१॥

दु:खितसुखितान् सत्तवान् करोमि यदेवमध्यवसितं ते।
तत्पापबन्धकं वा पुण्यस्य वा बन्धकं भवति॥२६०॥
मारयामि जीवयामि च सत्तवान् यदेवमध्यवसितं ते।
तत्पापबन्धकं वा पुण्यस्य वा बन्धकं भवति॥२६१॥

दुख सुख देता अन्य को, ऐसा मिथ्या ज्ञान।
पाप पुण्य के बन्धन का, कारण है यह जान॥८.२४.२६०॥ मैं
कारण जीवन मरण, ऐसा मिथ्या ज्ञान।
पाप पुण्य के बन्धन का, कारण है यहजान॥८.२५.२६१॥

जो यह मानता है कि मैं जीवों को सुख या दु:ख देता हूँ – यह मिथ्या भाव ही पाप या पुण्य के बंध का कारण बनता है।[SEP]जो यह मानता है कि मैं जीवों को मारता हूँ या जीवित करता हूँ – यह मिथ्या भाव ही पाप या पुण्य के बंध का कारण बनता है।

To believe "I cause happiness or misery to others" – that false notion becomes the cause of bondage to sin or virtue. To believe "I kill or give life to beings" –
[SEP]that false notion becomes the cause of bondage to sin or virtue.

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स॥२६२॥

अध्यवसितेन बन्ध: सत्त्वान् मारयतु मा वा मारयतु।
एष बन्धसमासो जीवानां निश्चयनयस्य॥२६२॥

मार ना मार जीव को, कर्मबंधन अध्यवसान।
निश्चयनय से जान लो, बंध का कारण मान॥८.२६.२६२॥

जीवों को मारो या न मारो – कर्मबन्ध तो केवल तुम्हारे अध्यवसाय (आंतरिक भाव) से होता है। निश्चयनय के अनुसार यही जीवों के बंध का संक्षिप्त रूप है।

Whether one kills a being or not, bondage arises from one's own inner disposition. This is the essence of bondage according to the *Nishchaya Naya* (absolute viewpoint).

एवमलिए अदत्ते अबंभचेरे परिग्गहे चेव।
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु बज्झदे पावं॥२६३॥
तह वि य सच्चे दत्ते बंभे अपरिग्गहत्तणे चेव।
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु बज्झदे पुण्णं॥२६४॥

एवमलीकेऽदत्तेऽब्रह्मचर्ये परिग्रहे चैव।
क्रियतेऽध्यवसानं यत्तेन तु बध्यते पापम्॥२६३॥
तथापि च सत्ये दत्ते ब्रह्माणि अपरिग्रहत्वे चैव।
क्रियतेऽध्यवसानं यत्तेन तु बध्यते पुण्यम्॥२६४॥

असत्य चोरी अब्रह्मचर्य, परिग्रह भी पहचान।
होता बन्धन पाप का, जब हो अध्यवसान॥८.२७.२६३ ॥
सत्य अचौर्य व ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह पहचान।
होता बन्धन पुण्य का, जब हो अध्यवसान॥८.२८.२६४ ॥

इसी प्रकार असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह में किया गया जो अध्यवसान (आंतरिक संकल्प) है, उससे पाप का बंध होता है। और इसी प्रकार सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह में किया गया जो अध्यवसान है, उससे पुण्य का बंध होता है।

In the same way, when one resolves internally (adhyavasāna) toward falsehood, stealing, unchastity, or possessiveness — it leads to bondage of sin.[SEP]And similarly, when one resolves toward truth, non-stealing, celibacy, and non-possessiveness — it leads to bondage of merit.

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं।
ण य वत्थुदो दु बंधो अज्झवसाणेण बंधोत्थि॥२६५॥

वस्तु प्रतीत्य यत्पुनरध्यवसानं तु भवति जीवानाम्।
न च वस्तुतस्तु बन्धोऽध्यवसानेन बन्धोऽस्ति॥२६५॥

वो वस्तु ही कारण है, होता अध्यवसान।
वस्तु करती बंधन नहीं,जब बंध वस्तु का ज्ञान॥८.२९.२६५

और जीवों का जो अध्यवसान होता है वह वस्तु के आधार पर होता है, न कि वस्तु स्वयं बंधन का कारण होती है। बंधन तो केवल अध्यवसान से ही होता है।

It is through association with an object that beings form intentions (adhyavasāna); yet the bondage does not occur due to the object itself — bondage arises only due to the intention.

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि।
जा एसा मूढमदी णिरत्थया सा हु दे मिच्छा॥२६६॥

दु:खितसुखितान् जीवान् करोमि बन्धयामि तथा विमोचयामि।
या एषा मूढमति: निरर्थिका सा खलु ते मिथ्या॥२६६॥

बाँधु छुड़ाऊँ जीव को, देता सुख दुख मान।
मूढ मति है अर्थ बिना, निश्चित मिथ्या ज्ञान॥८.३०.२६६

मैं जीवों को सुखी-दुखी करता हूँ, बंधन में डालता हूँ या मुक्त करता हूँ – ऐसी जो तेरी मूढ़ बुद्धि है, वह निरर्थक और वास्तव में मिथ्या है।

"I make souls happy or miserable, bind or liberate them" — such deluded thinking is useless; truly, it is false knowledge.

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ता किं करेसि तुमं॥२६७॥

अध्यवसाननिमित्तं जीवा बध्यन्ते कर्मणा यदि हि।
मुच्यन्ते मोक्षमार्गे स्थिताश्च तत् किं करोषि त्वम्॥२६७॥

जीव बंधे यदि कर्म से, निमित्त अध्यवसान।
मोक्षमार्ग छूटे मिले, तू क्या करता जान॥८.३१.२६७

यदि जीव अध्यवसान के निमित्त से कर्म से बंधते हैं, और मोक्षमार्ग में स्थित होकर मुक्त हो जाते हैं – तो फिर तू वास्तव में करता ही क्या है?

If beings are bound by karma due to their own intentions, and are liberated by abiding in the path of liberation — then what is it that *you* do?

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरइए।
देवमणुए य सव्वे पुण्णं पावं च णेयविहं॥२६८॥
धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोगलोगं च।
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं॥२६९॥

सर्वान् करोति जीवोऽध्यवसानेन तिर्यङ्नैरयिकान्।
देवमनुजांश्च सर्वान् पुण्यं पापं च नैकविधम्॥२६८॥
धर्माधर्मं च तथा जीवाजीवौ अलोकलोकं च।
सर्वान् करोति जीवः अध्यवसानेन आत्मानम्॥२६९॥

तिर्यंच नारकी स्व करे,जीव के अध्यवसान।
देव मनुष्य व पाप पुण्य, सर्व पर्याय को मान॥८.३२.२६८॥
जीव अजीव धर्म अधर्म, लोक व अलोक मान।
सभी स्वरुप स्व ही करे, जीव के अध्यवसान॥८.३३.२६९॥

जीव अपने अध्यवसान से तिर्यंच, नारकी, देव, मनुष्य तथा अनेकों प्रकार के पुण्य-पाप को करता है।[SEP]और उसी प्रकार धर्म, अधर्म, जीव, अजीव, लोक, अलोक – इन सभी स्वरूपों को भी अपने अध्यवसान से करता है।

By his own resolve, the soul becomes an animal, hell-being, god, or human —[SEP]and creates various kinds of virtue and vice.[SEP]Likewise, by his intention, he brings about the states of dharma and adharma, soul and non-soul, cosmos and beyond —[SEP]thus shaping his entire existence himself.

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि।
ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥२७०॥

एतानि न सन्ति येषामध्यवसानान्येवमादीनि।
ते अशुभेन शुभेन वा कर्मणा मुनयो न लिप्यन्ते॥२७०॥

दर्शन ज्ञान चारित्र का, अध्यवसान अभाव।
मुनि के शुभ अशुभ कर्म का, लिप्त नहीं स्वभाव॥८.३४.२७०॥

यह अथवा ऐसे और भी अध्यवसान जिनके नहीं हैं, वे मुनि अशुभ या शुभ कर्म से लिप्त नहीं होते।

Those who are free from such mental resolutions — such as attachment or aversion —The monks are not bound by either virtuous or non-virtuous karmas.

बुद्धी ववसाओ वि य अज्झवसाणं मदी य विण्णाणं।
एक्कट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो॥२७०॥

बुद्धिर्व्यसायोऽपि च अध्यवसानं मतिश्च विज्ञानम्।
एकार्थमेव सर्वं चित्तं भावश्च परिणाम:॥२७१॥

है सब ये एकार्थ ही, बुद्धि या अध्यवसान।
चित्त भाव व्यवसाय मति, परिणाम या विज्ञान॥८.३५.२७१॥

बुद्धि, व्यवसाय, अध्यवसान, मति, विज्ञान, चित्त, भाव और परिणाम – ये सब एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

Intellect, resolve, determination, understanding, consciousness, mind, feeling, and transformation —All these signify the same: the internal disposition of the soul.

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणएण।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं॥२७२॥

एवं व्यवहारनय: प्रतिसिद्धो जानीहि निश्चयनयेन।
निश्चयनयाश्रिता: पुनर्मुनय: प्राप्नुवन्ति निर्वाणम्॥२७२॥

निश्चयनय निषेध करे, व्यवहारनय विज्ञान।
जो मुनि निश्चय से रहे, उसे मिले निर्वाण॥८.३६.२७२॥

इस प्रकार व्यवहारनय को निश्चयनय के द्वारा निषिद्ध समझो।निश्चयनय के आश्रित मुनि ही निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

Thus, the standpoint of practical view (vyavahāra-naya) is refuted through the absolute view (niścaya-naya); Those ascetics who abide in the absolute view attain liberation (nirvāṇa).

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं।
कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु॥२७३॥

व्रतसमितिगुप्तय: शीलतपो जिनवरैः प्रज्ञप्तम्।
कुर्वन्नप्यभव्योऽज्ञानी मिथ्यादृष्टिस्तु॥२७३॥

व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तप, जिनवर का है ज्ञान।
पालन मिथ्यादृष्टि करे, अभव्य जीव अज्ञान॥८.३७.२७३॥

जिनवरों द्वारा प्रतिपादित व्रत, समितियाँ, गुप्तियाँ, शील और तप—even when practiced by an unfit soul (abhavya), he remains ignorant and of wrong belief (mithyādṛṣṭi).

Even if one practices vows, restraints, controls, conduct, and austerities as declared by the Jinas, if he is an unfit soul and ignorant, he remains a wrong-believer (mithyādṛṣṭi).

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु॥२७४॥

मोक्षमश्रद्दधानोऽभव्यसत्त्वस्तु योऽधीयीत।
पाठो न करोति गुणमश्रद्दधानस्य ज्ञानं तु॥२७४॥

अभव्य पढता शास्त्र भी, मोक्ष श्रद्धा अभाव।
पठना गुण करता नहीं, ज्ञान श्रद्धा न भाव॥८.३८.२७४॥

अभव्य जीव जो शास्त्र पढ़ता है पर मोक्ष में श्रद्धा नहीं करता –ऐसे ज्ञान की श्रद्धा रहित को पाठ करना गुण नहीं देता।

Even if an unfit soul (abhavya) studies the scriptures but lacks faith in liberation, such reading bears no merit, for knowledge without faith is fruitless.

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं॥२७५॥

श्रद्दधाति च प्रत्येति च रोचयति च तथा पुनश्च स्पृशति।
धर्मं भोगनिमित्तं न तु स कर्मक्षयनिमित्तम्॥२७५॥

प्रतीति, रुचि या श्रद्धा, या स्पर्श आदि काम।
अभव्य रहता भोग में, कर्मक्षय नहीं नाम॥८.३९.२७५॥

वह अभव्य जीव धर्म में प्रतीति, श्रद्धा, रुचि और स्पर्श करता है,परंतु वह धर्म भोग के निमित्त है, न कि कर्मक्षय के निमित्त।

He may have faith, belief, interest, and even touch the path of religion —but only as a means of enjoyment, not for the destruction of karma.

आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयं।
छज्जीवणिकं च तहा भणदि चरित्तं तु ववहारो॥२७६॥
आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो॥२७७॥

आचारादि ज्ञानं जीवादि दर्शनं च विज्ञेयम्।
षड्जीवनिकायं च तथा भणति चरित्रं तु व्यवहार:॥२७६॥
आत्मा खलु मम ज्ञानमात्मा मे दर्शनं चरित्रं च।
आत्मा प्रत्याख्यानमात्मा मे संवरो योग:॥२७७॥

जीवादि तत्त्व दर्शन है, आचारांग शास्त्र ज्ञान।
षट्जीव काय चारित्र है, वयवहारनय से जान॥८.४०.२७६॥
मेरी आत्मा ही दर्शन है, मेरी आत्मा ही ज्ञान।
चारित्र संवर योग भी, आत्मा ही प्रत्याख्यान॥८.४१.२७७॥

आचारांग आदि शास्त्र ज्ञान है;जीव आदि तत्त्वों का जानना दर्शन है;षट्-जीव निकायों को जानना चारित्र है – ऐसा व्यवहार नय कहता है।निश्चयनय से – मेरा आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही दर्शन है,आत्मा ही चारित्र, प्रत्याख्यान, संवर और योग है।

Scriptures like Āchārāṅga are knowledge,The substances like jīva are perception, Six life-forms are conduct — so says the viewpoint of convention. But truly, my soul itself is knowledge, perception, conduct, renunciation, restraint, and effort — all one in essence.

जलफलिहमणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहिं।
रंगिज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादीहिं दव्वेहिं॥२७८॥
एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रागमदीहिं।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रागदीहिं दोसेहिं॥२७९॥

यथा स्फटिकमणि: शुद्धो न स्वयं परिणमते रागाद्यैः।
रज्येऽन्यैस्तु स रक्तादिभिर्द्रव्यैः॥२७८॥
एवं ज्ञानी शुद्धो न स्वयं परिणमते रागाद्यैः।
रज्येऽन्यैस्तु स रागादिभिर्दोषैः॥२७९॥

ज्यूँ स्फटिकमणि शुद्ध सदा, परिणमन का अभाव।
रक्त मिले तो लाल दिखे, पर लाल ना स्वभाव॥८.४२.२७८॥
त्यूँ ज्ञानी भी शुद्ध सदा, परिणमन का अभाव।
रागादि से राग दिखे, पर राग नहीं स्वभाव॥८.४३.२७९॥

जैसे एक शुद्ध स्फटिक मणि स्वयं राग आदि से नहीं परिणमित होता,परन्तु अन्य द्रव्यों के संपर्क से लाल आदि रंग ग्रहण करता है;उसी प्रकार ज्ञानी भी शुद्ध होता है और स्वयं राग आदि से परिणमित नहीं होता,किन्तु वह अन्य दोषों के संपर्क में आकर रागादि दोषों से रंजित प्रतीत होता है।

Just as a pure crystal does not itself transform with color such as red, but appears colored when in contact with other colored substances —so too, the enlightened soul remains pure and does not itself transform with passion, but appears affected when in contact with others' impurities like attachment and aversion.

ण य रागदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा।
समयप्पणो ण सो तेण कारगो तेसिं भावाणं॥२८०॥

न च रागद्वेषमोहं करोति ज्ञानी कषायभावं वा।
स्वयमात्मनो न स तेन कारकस्तेषां भावानाम्॥२८०॥

राग द्वेष व मोह नहीं, ना ही कषाय भाव।
ज्ञानी स्व मे करे नही, कर्ता नहीं स्वभाव॥८.४४.२८०॥

ज्ञानी राग, द्वेष, मोह अथवा कषाय भाव को अपने आप में उत्पन्न नहीं करता;इसलिए वह उन भावों का कर्ता नहीं होता।

The enlightened soul does not generate attachment, aversion, delusion, or passions within itself; hence, it is not the doer or cause of those states.

रागम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणमंतो रागादी बंधदि पुणो वि॥२८१॥

रागे च द्वेषे च कषायकर्मसु चैव ये भावाः।
तैस्तु परिणममानो रागादीन् बध्नाति पुनरपि॥२८१॥

राग द्वेष व कषाय के, कर्म उदय में भाव।
बाँधे होकर परिणमित, अज्ञानी का स्वभाव॥८.४५.२८१॥

राग, द्वेष और कषाय कर्मों के उदय में जो भाव उत्पन्न होते हैं, उनमें परिणमित होता हुआ अज्ञानी पुनः राग आदि का बंध करता है।

Due to the rise of karmas like attachment, aversion, and passions, when one's dispositions align with these, the ignorant binds such passions again and again.

रागम्हि या दोसम्हि या कसायकम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणमंतो रागादी बंधदे चेदा॥२८२॥

रागे चे द्वेषे च कषायकर्मसु चैव ये भावाः।
तैस्तु परिणममानो रागादीन् बध्नाति चेतयिता॥२८२॥

राग द्वेष कषाय उदय, उठते जैसे भाव।
परिणमती वो आत्मा, रागादि का प्रभाव॥८.४६.२८२॥

राग, द्वेष और कषाय कर्मों के उदय के समय जो भाव उत्पन्न होते हैं, उनमें परिणमित होता हुआ चेतन आत्मा राग आदि का बंध करता है।

When passions like attachment, aversion, and other kashaya karmas arise, the conscious soul, undergoing transformation into those states, binds karmas such as attachment.

अप्पडिकमणं दुविहं अपच्चखाणं तहेव विण्णेयं।
एदेणुवदेसेण य अकारगो वण्णिदो चेदा॥२८३॥
अप्पडिकमणं दुविहं दव्वे भावे अपच्चखाणं पि।
एदेणुवदेसेण य अकारगो वण्णिदो चेदा॥२८४॥
जावं अप्पडिकमणं अपच्चखाणं च दव्वभावाणं।
कुव्वदि आदा तावं कत्ता सो होदि णादव्वो॥२८५॥
अधाकम्मादीया पोग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कह ते कुव्वदि णाणी परदव्वगुणा दु जे णिच्चं॥२८६॥
आधाकम्मं उद्देसियं च पोग्गलमयं इमं दव्वं।
कह तं मम होदि कयं जं णिच्चमदेणं वुत्तं॥२८७॥

अप्रतिक्रमणं द्विविधमप्रत्याख्यानं तथैव विज्ञेयम्।
एतेनोपदेशेन चाकारको वर्णितश्चेतयिता॥२८३॥
अप्रतिक्रमणं द्विविधं द्रव्ये भावेऽप्यप्रत्याखानम्।
एतेनोपदेशेन चाकारको वर्णितश्चेतयिता॥२८४॥
यावदप्रतिक्रमणमप्रत्याख्यानं च द्रव्यभावयोः।
करोत्यात्मा तावत्कर्ता स भवति ज्ञातव्यः॥२८५॥
अधःकर्माद्याः पुद्गलद्रव्यस्य य इमे दोषाः।
कथं तान् करोति ज्ञानी परद्रव्यगुणास्तु ये नित्यम्॥२८६॥
अधःकर्मोद्देशिकं च पुद्गलमयमिदं द्रव्यं।
कथं तन्मम भवति कृतं यन्नित्यमचेतनमुक्तम्॥२८७॥

दो तरह का अप्रतिक्रमण, द्विविध अप्रत्याखान।
आत्मा तो कर्ता नहीं, इन वचनों से जान॥८.४७.२८३॥
अप्रत्याखान, अप्रतिक्रमण, द्रव्य-भाव विचार।
आत्मा तो कर्ता बने, यह उपदेश संसार॥८.४८.२८४॥
जब तक इनसे युक्त है, तब तक करता जान।
इनसे मुक्त वही असल में, कर्तापन से त्राण॥८.४९.२८५॥
वह कर्म जो हिंसा करे, पुद्गल द्रव्य विकार।
ऐसे नियत पर द्रव्य को, ज्ञानी क्यूँ स्वीकार?॥८.५०.२८६॥
कर्म उद्देश्य से है बना, पुद्गल द्रव्य का सार।
नित्य और अचेतन है, मै क्यूँ करु स्वीकार॥८.५१.२८७॥

दो प्रकार के अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान होते हैं – द्रव्य और भाव के रूप में। इस उपदेश से आत्मा को अकर्तापन में जाना गया है। जब तक आत्मा द्रव्य और भाव के अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान में लिप्त रहता है, तब तक वह कर्ता होता है।[SEP]जो दोष अधःकर्मों से जुड़े हुए पुद्गल द्रव्य में हैं – वे स्थायी परद्रव्य के गुण हैं, तो ज्ञानी उन्हें कैसे स्वीकार कर सकता है?[SEP]यह पुद्गलमय द्रव्य जो कर्मों के उद्देश्य से बना है और नित्य अचेतन है – उसे मैं अपनी वस्तु कैसे मान सकता हूँ?

There are two forms of non-renunciation and non-repentance — of substance and of modes.[SEP]By this teaching, the soul is declared as non-doer. As long as the soul engages in non-renunciation and non-repentance of substance and modes, it is the doer.[SEP]How can the wise accept the defects of karmic material, which are in fact eternal qualities of another substance? This karmically purposed material substance, which is eternal and unconscious — how can it ever be mine?

9 मोक्ष अधिकार

जह णाम को वि पुरिसो बंधणयम्हि चिरकालपडिबद्धो।
तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणदे तस्स॥२८८॥
जइ ण वि कुणदि च्छेदं ण मुच्चदे तेण बंधणवसो सं।
कालेण उ बहुगेण वि ण सो णरो पावदि विमोक्खं॥२८९॥
इय कम्मबंधणाणं पदेसठिइपयडिमेवमणुभागं।
जाणंतो वि ण मुच्चदि मुच्चदि सो चेव जदि सुद्धो॥२९०॥

यथा नाम कश्चित्पुरुषो बन्धनके चिरकालप्रतिबद्धः।
तीव्रमंदस्वभावं कालं च विजानाति तस्य॥२८८॥
यदि नापि करोति छेदं न मुच्यते तेन बन्धनवशः सन्।
कालेन तु बहुकेनापि न स नरः प्राप्नोति विमोक्षम्॥२८९॥
इति कर्मबन्धनानां प्रदेशस्थितिप्रकृतिमेवमनुभागम्।
जानन्पि न मुच्यते मुच्यते स चैव यदि शुद्धः॥२९०॥

जैसे बन्धन में पुरुष, बंधा हुआ चिरकाल।
तीव्र मन्द स्वभाव समझे, जाने बन्धन काल॥९.१.२८८॥
बन्धन काटे स्वयं नही, मुक्त नहीं हो पाय।
दीर्घ काल तक बंधा रहे, जो करे नहीं उपाय॥९.२.२८९॥
कर्म बन्ध प्रदेश स्थिति, प्रकृति और अनुभाग।
कर्म बन्ध छूटे नहीं, जब तक मन में राग॥९.३.२९०॥

जैसे बन्धन में बहुत समय से बँधा हुआ कोई पुरुष उस बन्धन के तीव्र मन्द स्वभाव को और काल को जानता है, किन्तु यदि उस बन्धन को स्वयं नहीं काटता तो वह उससे मुक्त नहीं होता और बन्धनवश रहता हुआ बहुत काल में भी वह पुरुष बन्धन से छूटने रुप मुक्ति को प्राप्त नहीं करता; इसी प्रकार जीव कर्म बन्धनो के प्रदेश, स्थिति, प्रकृति और अनुभाग को जानता हुआ भी कर्म बन्धन से नहीं छूटता, यदि वह स्वयं शुद्ध (रागादि को दूर कर के) होता है तभी मुक्त होता है।

The man who is bound in bondage for a long time may understand the severity and nature of that bondage, but if he does not attempt to cut the bondage himself, he cannot be free and will not attain liberation even after a long time. Similarly, even one who knows the intensity, duration, type, and volume of karmic bondage does not become free unless he purifies himself.

जह बंधे चिंततो बंधणबद्धो ण पावदि विमोक्खं।
तह बंधे चिंततो जीवो वि ण पावदि विमोक्खं॥२९१॥

यथा बन्धांश्चिन्तयन् बन्धनबद्धो न प्राप्नोति विमोक्षम्।
तथा बन्धांश्चिन्तयन् जीवोऽपि न प्राप्नोति विमोक्षम्॥२९१॥

जैसे पुरुष बँधा हुआ, मुक्त न सिर्फ विचार।
वैसे जीव कर्म बँधा, मुक्त न केवल विचार॥९.४.२९१॥

जैसे बन्धनों से बँधा पुरुष बन्धों के केवल विचार करने से नहीं मुक्त हो सकता, उसी प्रकार जीव भी बन्धनों के केवल विचार करने से मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

Just as a man bound by chains cannot attain liberation merely by thinking about the bondage, so too, a soul bound by karma does not attain liberation merely by thinking about the bondage.

जह बंधे छेत्तूण य बंधणबद्धो दु पावदि विमोक्खं।
तह बंधे छेत्तूण य जीवो संपावदि विमोक्खं॥२९२॥

यथा बन्धं छित्त्वा च बन्धनबद्धः लभते विमोक्षम्।
तथा बन्धं छित्त्वा च जीवः सम्प्राप्नोति विमोक्षम्॥२९२॥

जैसे बन्धन तोड़ कर, पुरुष मुक्त हो जाय।
वैसे कर्म को छेद कर, जीव मोक्ष पा जाय॥९.५.२९२॥

जैसे कोई व्यक्ति बन्धनों को काटकर बन्धनमुक्त हो जाता है, उसी प्रकार जीव भी जब कर्मों को छेदता है तब मोक्ष को प्राप्त करता है।

Just as a man becomes free by breaking his physical bonds, so too the soul attains liberation by severing karmic bonds.

बंधाणं च सहावं वियाणिदुं अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदि॥२९३॥

बन्धानां च स्वभावं विज्ञायात्मनः स्वभावं च।
बन्धेषु यो विरज्यते स कर्मविमोक्षणं करोति॥२९३॥

आत्मा और बंधन का, जिसको ज्ञात स्वभाव।
विरक्त होकर जीवन से, जन्म मरण अभाव॥९.६.२९३॥

बन्धनों के स्वभाव को और आत्मा के स्वभाव को जानकर जो व्यक्ति उनसे विरक्त हो जाता है, वही कर्म से मुक्त होने का कार्य करता है।

One who understands the nature of bondage and the nature of the soul, and becomes detached from bondage, brings about liberation from karma.

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा॥२९४॥

जीवो बन्धश्च तथा छिद्यते स्वलक्षणाभ्यां नियताभ्याम्।
प्रज्ञाछेदनकेन तु छिन्नौ नानात्वमापन्नौ॥२९४॥

अपने अपने लक्षण से, छेदे बंध व जीव।
छेनी ज्ञान की लगे, बंध अलग हो जीव॥९.७.२९४॥

जीव और बंध दोनों अपने-अपने निश्चित लक्षणों द्वारा प्रकट होते हैं; और जब उन्हें प्रज्ञा (ज्ञान) की छेनी से काटा जाता है, तब वे अलग-अलग होकर भिन्नता को प्राप्त होते हैं।

The soul and bondage are both severed by their respective definite characteristics; when cut with the chisel of wisdom, they become distinct and separate.

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
बंधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो॥२९५॥

जीवो बंधश्च तथा स्वलक्षणाभ्यां नियताभ्याम्।
बन्धश्छेत्तव्यः शुद्ध आत्मा च गृहीतव्यः॥२९५॥

स्वलक्षण से छेदन हो, जीव व बंध का जान।
वहाँ बंध को छोड़ दे, ग्रहण आत्म का ज्ञान॥९.८.२९५॥

इस प्रकार जब जीव और बंध दोनों अपने-अपने निश्चित लक्षणों से पहचाने जाते हैं, तब बंधन को काट देना चाहिए और शुद्ध आत्मा को ही अपनाना चाहिए।

In this way, when the soul and bondage are discerned by their distinct characteristics, the bondage should be severed and the pure soul should be embraced.

कह सो घिप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा।
जह पण्णाइ तह पण्णाएव घेत्तव्वो॥२९६॥

कथं स गृह्यते आत्मा प्रज्ञया स तु गृह्यते आत्मा।
यथा प्रज्ञया विभक्तस्तथा प्रज्ञयैव गृहीतव्यः॥२९६॥

आत्मा कैसे ग्रहण करे?, प्रज्ञा आत्मा द्वार।
जैसे प्रज्ञा अलग करे, प्रज्ञा से ही उद्धार॥९.९.२९६॥

आत्मा को कैसे ग्रहण किया जाए? – प्रज्ञा (ज्ञानशक्ति) के द्वारा आत्मा को ग्रहण किया जाता है। जैसे वह प्रज्ञा से अलग किया गया है, उसी प्रज्ञा से उसे ग्रहण करना चाहिए।

How is the soul grasped? — Through discernment (prajnā). As it is distinguished by prajñā, so too it must be realized through prajñā alone.

पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा॥२९७॥

प्रज्ञया गृहीतव्यो यश्चेतयिता सोऽहं तु निश्चयतः।
अवशेषा ये भावाः ते मम परा इति ज्ञातव्याः॥२९७॥

प्रज्ञा से आत्मा विदित, निश्चय से 'स्व' को जान।
स्व अलग जो शेष बचा, पर का होगा ज्ञान॥९.१०.२९७॥

प्रज्ञा के द्वारा जिस चेतन स्वरूप को जाना गया है, वह मैं हूँ – ऐसा निश्चयपूर्वक जानना चाहिए। और जो शेष अन्य भाव हैं, वे मुझसे भिन्न हैं – ऐसा जानना चाहिए।

That which is grasped by discernment — the knower — is truly the Self. All other remaining states are to be known as not-self.

पण्णाए घित्तेव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो।
वसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा॥२९८॥
पण्णाए घित्तेव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा॥२९९॥

प्रज्ञया गृहीतव्यो यो द्रष्टा सोऽहं तु निश्चयतः।
अवशेषा ये भावाः ते मम परा इति ज्ञातव्याः॥२९८॥
प्रज्ञया गृहीतव्यो यो ज्ञाता सोऽहं तु निश्चयतः।
अवशेषा ये भावाः ते मम परा इति ज्ञातव्याः॥२९९॥

प्रज्ञा द्वारा ग्रहण करे, निश्चय दृष्टा जान।
शेष रहे जो भावना, पर उसकी पहचान॥९.११.२९८॥
प्रज्ञा द्वारा ग्रहण करे, निश्चय ज्ञाता जान।
शेष रहे जो भावना, पर उसकी पहचान॥९.१२.२९९॥

प्रज्ञा के द्वारा इस प्रकार ग्रहण करना चाहिए कि जो जानने वाला है वह निश्चय से मैं हूँ, शेष जो भाव है वे मुझसे पर हैं, ऐसा जानना चाहिए।

By right wisdom it should be realized — "I am the seer," in the absolute (nischaya) sense; all other states that remain are not mine — they are to be known as external.

को णाम भणिज्ज बुहो णादुं सव्वे पराइए भावे।
मज्झमिणं ति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं॥३००॥

को नाम भणेद् बुधः ज्ञात्वा सर्वान् परकीयान् भावान्।
ममेदमिति च वचनं जानन्नात्मानं शुद्धं॥३००॥

जाने ज्ञानी जो स्व को, पर भावों का ज्ञान।
यह मेरा' क्यूँ बोलता? ऐसा वचन अज्ञान॥९.१३.३००॥

सभी भावों को पर का जानकर कौन ज्ञानी अपने को जानता हुआ 'यह मेरा है', ऐसा वचन बोलेगा?

Who, knowing the soul as pure and all states as alien, would speak the words "this is mine"?

थेयादी अवराहे जो कुव्वदि सो उ संकिदो भमदि।
मा बजझेज्जं केण वि चोरो त्ति जणम्हि वियरंतो॥३०१॥
जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्संको दु जणवदे भमदि।
ण वि तस्स बज्झिदुं जे चिंता उप्पज्जदि कयाइ॥३०२॥
एवम्हि सावराहो बज्झामि अहं तु संकिदो चेदा।
जइ पुण णिरावराहो णिस्संकोहं ण बज्झामि॥३०३॥

स्तेयादीनपराधान् यः करोति स तु शङ्कितो भ्रमति।
मा बध्ये केनापि चौर इति जने विचरन्॥३०१॥
यो न करोत्यपराधान् स निश्शङ्कस्तु जनपदे भ्रमति।
नापि तस्य बद्धुं यच्चिन्तोत्पद्यते कदाचित्॥३०२॥
एवमस्मि सापराधो बध्येऽहं तु शङ्कितश्चेतयिता।
यदि पुनर्निरपराधो निश्शङ्कोऽहं न बध्ये॥३०३॥

जो व्यक्ति अपराध करे, डर कर घूमें लोक।
चोर समझ कर न पकड़े, शंकित मन में शोक॥९.१४.३०१॥
जो व्यक्ति अपराध न करे, निःशंक घूमें लोक।
बँधने की चिन्ता नहीं, ना ही मन मे शोक॥९.१५.३०२॥
इसी तरह जो पाप करे, शंकित घूमें लोक।
पाप रहित जब आत्मा, रहे निशंक ना शोक॥९.१६.३०३॥

जो पुरुष चोरी आदि के अपराध करता है, वह 'लोक में घूमता हुआ मुझे कोई चोर समझ कर पकड़ न ले' इस प्रकार शंकित होता हुआ घूमता है; जो पुरुष अपराध नहीं करता वह लोक में निः शंक घूमता है, क्योंकि उसे बँधने की चिन्ता कभी भी उत्पन्न नहीं होती। इसी प्रकार अपराधी

आत्मा “मैं अपराधी हूँ”, इसलिए “मैं बँधूँगा” इस प्रकार शंकित होता है, और यदि अपराध रहित हो तो “मैं नहीं बँधूँगा” इसप्रकार निःशंक होता है।

One who commits theft or other transgressions roams about in fear,[SEP]Worrying lest someone catch him thinking he is a thief. But one who commits no offense moves freely without fear in the land,[SEP]No thought ever arises in him of being bound. Likewise, when I have faults, I think I’ll be bound and remain afraid. But when I’m faultless, I’m free from fear—I shall not be bound.

संसिद्धिराधसिद्धं साधियमाराधियं च एयट्ठं।
अवगधराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराधो॥३०४॥
जो पुण णिरावराधो चेदा णिस्संकिओ उ सो होइ।
आराहणाइ णिच्चं वट्टेइ अहं ति जाणतो॥३०५॥

संसिद्धिराधसिद्धं साधितमराधितं चैकार्थम्।
अपगतराधो यः खलु चेतयिता स भवत्यपराधः॥३०४॥
यः पुनर्निरपराधश्चेतयिता निश्शङ्कितस्तु स भवति।
आराधनया नित्यं वर्तते अहमिति जानन्॥३०५॥

संसिद्धि, राध, सिद्ध, साधित, आराधित, इक मान।
राधरहित जो आत्मा, पापी उसको जान॥९.१७.३०४॥
निरपराधी निशंक रहे, शुद्ध उसे तू मान।
शुद्ध जाने स्वयं को, आराधक पहचान॥९.१८.३०५॥

संसिद्धि, राध, सिद्ध साधित और आराधित- ये एकार्थवाची शब्द है। जो आत्मा राधसे रहित है वह आत्मा अपराधी हैं। और जो आत्मा निरपराध है वह निःशंक होती है। जो शुद्ध आत्मा है सो ही मैं हूँ, ऐसा जानता हुआ आराधना से सदा वर्तता है।

Siddhi, radh, accomplishment, fulfillment, and worship—all have the same meaning. The soul that lacks these is to be known as faulty or erroneous. But one who is faultless, fearless, and knows "I am pure," Engages constantly and naturally in true worship.

पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य।
णिंदा गरहा सोही अट्ठविहो होदि विसकुंभो॥३०६॥
अप्पडिकमणमप्पडिसरणं अप्परिहारो अधारणा चेव।
अणियत्ती य अणिंदागरहासोही अमयकुंभो॥३०७॥

प्रतिक्रमणं प्रतिसरणं परिहारो धारणा निवृत्तिश्च।
निन्दा गर्हा शुद्धिः अष्टविधो भवति विषकुम्भः॥३०६॥
अप्रतिक्रमणमप्रतिसरणमपरिहारोऽधारणा
चैव।अनिवृत्तिश्चानिन्दाऽगर्हाऽशुद्धिरमृतकुम्भः॥३०७॥

प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, निवृत्ति, निन्दा, धारणा, परिहार।
गर्हा, शुद्धि आठ विषकुंभ, कर्तृत्व बुद्धि विचार॥९.१८.३०६॥
प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, निवृत्ति, निन्दा, धारणा, परिहार।
गर्हा, शुद्धि ये आठ नहीं, अमृत ज्ञान आचार॥९.१९.३०७॥

यदि कर्तापन की भावना है, तो आठ कर्म—प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निंदा, गर्हा और शुद्धि—विष का कुंभ बन जाते हैं। परंतु यदि कर्तापन की भावना नहीं है, तो अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, अपरिहार, अधारणा, अनिवृत्ति, अनिंदा, अगर्हा और अशुद्धि—अमृत का कुंभ बन जाते हैं।

If there is belief in doership, then the eight practices—repentance, confession, avoidance, retention, withdrawal, criticism, reproach, and purification—form the poisonous pot. But if the belief in doership is absent, then non-repentance, non-confession, non-avoidance, non-retention, non-withdrawal, non-criticism, non-reproach, and impurity become the pot of nectar.

10 सर्वविशुद्ध ज्ञान अधिकार

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं।
जह कडयादीहिं दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह ॥३०८॥
जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते।
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि ॥३०९॥
ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो आदा।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि ॥३१०॥
कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि।
उप्पजंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसदे अण्णा ॥३११॥

द्रव्यं यदुत्पद्यते गुणैस्तत्तैर्जानीह्यनन्यत्।
यथा कटकादिभिस्तु पर्यायैः कनकमनन्यदिह ॥३०८॥
जीवस्याजीवस्य तु ये परिणामास्तु दर्शिताः सूत्रे।
तं जीवमजीवं वा तैरनन्यं विजानीहि ॥३०९॥
न कुतश्चिदप्युत्पन्नो यस्मातकार्यं न तेन स आत्मा।
उत्पादयति न किञ्चिदपि कारणमपि तेन न स भवति ॥३१०॥
कर्म प्रतीत्य कर्ता कर्तारं तथा प्रतीत्य कर्माणि।
उत्पद्यन्ते च नियमात्सिद्धिस्तु न दृश्यतेऽन्या ॥३११॥

द्रव्य गुणों से उत्पन्न हो, गुणों से अनन्य जान।
जैसे सोने का कड़ा, स्वर्ण असल पहचान॥१०.१.३०८॥
वैसे जीव अजीव का, सूत्र में परिणाम।
जानों जीव अजीव को, वही अनन्य परिणाम॥१०.२.३०९॥
आत्मा अनादि काल से, नहीं किसी का काम।
ना ही ये उत्पन्न करे, कारणमें नहीं नाम॥१०.३.३१०॥
कर्म से ही कर्ता बने, कर्ता कर्म बनाय।
अन्य कोई कारण नहीं, कर्ता कर्म सिवाय॥१०.४.३११॥

जो द्रव्य जिन गुणों से उत्पन्न होता है, उन गुणों से उसे अनन्य जानो; जैसे जगत में कड़ा आदि पर्यायों से सुवर्ण अनन्य है वैसे। जीव और अजीव के परिणाम सूत्र में बताये हैं, उन परिणामों से उस जीव अथवा अजीव को अनन्य जानो। क्योंकि किसीसे भी उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिए वह आत्मा किसी का कार्य नहीं है, और किसी को उत्पन्न नहीं करता, इसलिए वह कारण भी नहीं है। नियम से कर्म के आश्रय से कर्ता होता है; और कर्ता के आश्रय से कर्म उत्पन्न होते हैं; अन्य किसी प्रकार से कर्ता-कर्म की सिद्धि नहीं देखी जाती।

The substance that arises from certain qualities should be known as non-distinct from those qualities—just as gold remains non-distinct from ornaments like bangles, which are only its modifications.

The states (modifications) of soul and non-soul described in the scriptures should likewise be understood as non-distinct from the soul and non-soul themselves.
Since the soul is not produced from anything, it is not an effect of any cause; and because it does not produce anything else, it is not a cause either.
By rule, the doer exists due to karma, and karma arises due to the doer; no other explanation for the existence of doer and karma is observed.

चेदा दु पयडीअट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ।
पयडी वि चेययट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ॥३१२॥
एवं बंधो उ दोण्हं पि अण्णोण्णप्पच्चया हवे।
अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायदे॥३१३॥

चेतयिता तु प्रकृत्यर्थमुत्पद्यते विनश्यति।
प्रकृतिरपि चेतकार्थमुत्पद्यते विनश्यति॥३१२॥
एवं बन्धस्तु द्वयोरपि अन्योन्यप्रत्ययाद्भवेत्।
आत्मनः प्रकृतेश्च संसारस्तेन जायते॥३१३॥

निमित्त बनती है प्रकृति, आत्मा प्रादुर्भाव।
आत्मा भी निमित्त बनती, प्रकृति का प्रभाव॥१०.५.३१२॥
आत्मा और प्रकृति का, परस्परहो प्रचार।
निमित्तनैमेत्तिक बंध से, बनता है संसार॥१०.६.३१३॥

चेतन आत्मा कर्म द्रव्य के निमित्त से उत्पन्न होता है और नष्ट होता है,
और कर्म द्रव्य भी चेतन आत्मा के निमित्त से उत्पन्न होता है और नष्ट होता है।
इस प्रकार आत्मा और कर्म की परस्पर निर्भरता से बंधन उत्पन्न होता है,
और इसी परस्पर संबंध से संसार का चक्र जन्म लेता है।

The conscious self arises and perishes for the sake of the karmic matter, and the karmic matter arises and perishes for the sake of the conscious self. Thus, bondage arises from the mutual dependence of soul and karma, and from this mutual association, the cycle of worldly existence is born.

जा एस पयडीअट्ठं चेदा णेव विमुंचए।
अयाणओ हवे ताव मिच्छादिट्ठी असंजओ॥३१४॥
जदा विमुंचए चेदा कम्मफलमणंतयं।
तदा विमुत्तो हवदि जाणओ पासओ मुणी॥३१५॥

यावदेष प्रकृत्यर्थं चेतयिता नैव विमुञ्चति।
अज्ञायको भवेत्तावन्मिथ्यादृष्टिरसंयतः॥३१४॥
यदा विमुञ्चति चेतयिता कर्मफलमनन्तकम्।
तदा विमुक्तो भवति ज्ञायको दर्शको मुनिः॥३१५॥

उपजना और विनशना, जब तक प्रकृति हाथ।
अज्ञायक व मिथ्यादृष्टि, हो असंयम का साथ॥१०.७.३१४॥
आत्मा जब है छोड़ता, अनन्त कर्मफल हाथ।
तब वह ज्ञायक दर्शक है, विमुक्त मुनि का साथ॥१०.८.३१५॥

जब तक यह आत्मा प्रकृति के निमित्त से उपजना-विनशना नहीं छोड़ता, तब तक वह अज्ञायक है, मिथ्यादृष्टि है और असंयत है।[SEP]जब आत्मा अनन्त कर्म फल को छोड़ देता है, तब वह ज्ञायक है, दर्शक है, मुनि है, और बन्ध से मुक्त हो जाता है।

As long as the soul does not abandon the arising and perishing caused by nature, it remains ignorant, with false perception, and unrestrained.[SEP]When the soul abandons the infinite fruits of karma, it becomes the knower, the seer, the sage — the liberated one.

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिदो दु वेदेदि।
णाणी पुण कम्मफलं जाणदि उदिदं ण वेदेदि॥३१६॥

अज्ञानी कर्मफलं प्रकृतिस्वभावस्थितस्तु वेदयते।
ज्ञानी पुनः कर्मफलं जानाति उदितं न वेदयते॥३१६॥

कर्म फलों को भोगता, ज्ञानी ना स्वभाव।
ज्ञानी केवल जानता, कर्म फलों का भाव॥१०.९.३१६॥

अज्ञानी प्रकृति के स्वभाव में स्थित रहता हुआ कर्म फलों को भोगता है। ज्ञानी कर्म के उदित फल को जानता है, पर उसे भोगता नहीं।

The ignorant one, absorbed in the nature-bound state, experiences the fruits of karma. The wise one, however, knows the arising karma fruits but does not experience them.

ण मुयदि पयडिमभव्वो सुट्ठु वि अज्झाइदूण सत्थाणि।
गुडदुद्धं पि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा होंति॥३१७॥

न मुञ्चति प्रकृतिमभव्यः सुष्ठूवपि अधीत्य शास्त्राणि।
गुडदुग्धमपि पिबन्तो न पन्नगा निर्विषा भवन्ति॥३१७॥

अभव्य चाहे शास्त्र पढे, ना निसर्ग का त्याग।
सर्प मीठा दूध पिये, फिर भी विष का राग॥१०.१०.३१७॥

भली भाँति शास्त्रों को पढ़ लेने पर भी अभव्य जीव प्रकृति को नहीं छोड़ता, जैसे मीठा दूध पीने पर भी सर्प विष को नहीं छोड़ता।

Even after thoroughly studying the scriptures, an unworthy soul does not abandon its nature—just as a serpent drinking sweet milk does not become free from poison.

णिव्वेयसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणेदि।
महुरं कडुयं बहुविहमवेयओ तेण सो होइ॥३१८॥

निर्वेदसमापन्नो ज्ञानी कर्मफलं विजानाति।
मधुरं कटुकं बहुविधमवेदकस्तेन स भवति॥३१८॥

ज्ञानी हो वैराग्य में, कर्म फलों का ज्ञान।
कड़वे मीठे फल कई, भोक्ता ना पहचान॥१०.११.३१८॥

वैराग्य को प्राप्त ज्ञानी मीठे, कड़वे और अनेक प्रकार के कर्म फलों को जानता है, परंतु भोगता नहीं है।

The detached wise one knows the sweet, bitter, and various kinds of karmic fruits, but does not experience them.

ण वि कुव्वइ ण वि वेयइ णाणी कम्माइं बहुपयाराइं।
जाणइ पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च॥३१९॥

नापि करोति नापि वेदयते ज्ञानी कर्माणि बहुप्रकाराणि।
जानाति पुनः कर्मफलं बन्धं पुण्यं च पापं च॥३१९॥

ना करता ना भोगता, कर्म अनेक प्रकार।
फल पुण्य या पाप रहे, ज्ञानी करे विचार॥१०.१२.३१९॥

ज्ञानी बहुत प्रकार के कर्मों को न तो करता है और न ही भोगता है। किन्तु वह पुण्य और पापरूप कर्म बन्ध तथा उसके फल को जानता है।

The wise one neither performs nor experiences the various types of karma, but knows the karmic results—both merit and sin—and the bondage they cause.

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव॥३२०॥

दृष्टिः यथैव ज्ञानमकारकं तथाऽवेदकं चैव।
जानाति च बन्धमोक्षं कर्मोदयं निर्जरां चैव॥३२०॥

कर्ता- भोक्ता चक्षु नहीं, सिर्फ देखना काम।
बन्ध मोक्ष कर्म निर्जरा, सिर्फ जानना काम॥१०.१३.३२०॥

जैसे नेत्र केवल देखते हैं परन्तु कर्ता या भोक्ता नहीं होते, उसी प्रकार ज्ञानी भी न कर्ता होता है, न भोक्ता। वह केवल बंध, मोक्ष, कर्मोदय तथा निर्जरा को जानता है।

Just as the eye only sees but neither acts nor experiences, so too the wise one neither acts nor enjoys—he only knows bondage, liberation, karmic rise, and shedding.

लोयस्स कुणदि विण्हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते।
समणाणं पि य अप्पा जदि कुव्वदि छव्विहे काए॥३२१॥
लोयसमणाणमेयं सिद्धंतं जइ ण दीसदि विसेसो।
लोयस्स कुणइ विण्हू समणाण वि अप्पओ कुणदि॥३२२॥
एवं ण को वि मोक्खो दीसदि लोयसमणाण दोण्हं पि।
णिच्चं कुव्वंताणं सदेवमणुयासुरे लोए॥३२३॥

लोकस्य करोति विष्णुः सुरनारकतिर्यङ्मानुषान् सत्तवान्।
श्रमणानामपि चात्मा यदि करोति षड्विधान् कायान्॥३२१॥
लोयसमणाणमेयं सिद्धंतं जइ ण दीसदि विसेसो।
लोयस्स कुणइ विण्हू समणाण वि अप्पओ कुणदि॥३२२॥
एवं ण को वि मोक्खो दीसदि लोयसमणाण दोण्हं पि।
णिच्चं कुव्वंताणं सदेवमणुयासुरे लोए॥३२३॥

चार गति विष्णु करे, लोक अगर यह मान।
आत्म छह काय करे, श्रवण करे जब ज्ञान॥१०.१४.३२१॥
लोक श्रमण फिर एक मत, अन्तर नहीं है जान।
लोक में विष्णु करता, श्रमण आत्मा मान॥१०.१५.३२२॥
मोक्ष तब दिखता नहीं, श्रमण हो यो लोक।
चार गति विष्णु करे, आत्मा फिरावें लोक॥१०.१६.३२३॥

यदि लोक के मत में विष्णु देव, नरक, तिर्यंच और मनुष्य को बनाता है, और श्रमणों के मत में आत्मा छह काय के जीवों को करता है, तो दोनों का मत समान हो गया – कर्ता विष्णु या आत्मा। इस स्थिति में जब दोनों ही कर्ता मानते हैं, तो फिर मोक्ष का कोई मार्ग नहीं दिखता – क्योंकि कर्तापन में मोक्ष नहीं है। जो सदा देव, मनुष्य, तिर्यंच, असुर लोकों को करता रहता है, वह मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता।

If, as per the worldly belief, Vishnu creates celestial, hellish, subhuman, and human beings, and the soul, according to ascetics, creates the six-bodied beings, Then, seeing no distinction between the doctrines of the worldly and ascetics, both regard either Vishnu or the soul as the doer. Hence, no liberation is visible for either — the worldly or the ascetics — as both believe in constant doing across the realms of gods, humans, subhumans, and demons.

ववहाराभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति अविदिदत्था।
जाणंति णिच्छएण दु ण य मह परमाणुमित्तमवि किंचि॥३२४॥
जह को वि णरो जंपदि अम्हं गामविसयणयररट्ठं।
ण य होंति तस्स ताणि दु भणदि य मोहेण सो अप्पा॥३२५॥
एमेव मिच्छदिट्ठी णाणी णीसंसयं हवदि एसो।
जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणदि॥३२६॥
तम्हा ण मे त्ति णच्चा दोण्ह वि एदाण कत्तविवसायं।
परदव्वे जाणंतो जाणेज्जो दिट्ठिरहिदाणं॥३२७॥

व्यवहारभाषितेन तु परद्रव्यं मम भणन्त्यविदितार्थाः।
जानन्ति निश्चयेन तु न च मम परमाणुमात्रमपि किञ्चित्॥३२४॥
यथा कोऽपि नरो जल्पति अस्माकं ग्रामविषयनगरराष्ट्रम्।
न च भवन्ति तस्य तानि तु भणति च मोहेन स आत्मा॥३२५॥
एवमेव मिथ्यादृष्टिर्ज्ञानी निःसंशयं भवत्येषः।
यः परद्रव्यं ममेति जानन्नात्मानं करोति॥३२६॥
तस्मान्न मे इति ज्ञात्वा द्वयेषामप्येतेषां कर्तवेयवसायम्।
परद्रव्ये जानन् जानीयात् दृष्टिरहितानाम्॥३२७॥

पर द्रव्य मेरा कहता, ज्ञानी का व्यवहार।
किञ्चित भी मेरा नहीं, निश्चय से आचार॥१०.१७.३२४॥
ग्राम नगर व राष्ट्र को, नर जो अपना मान।
पर ये अपने है नहीं, आत्म सत्य जब जान॥१०.१८.३२५॥
पर द्रव्य मेरा कहता, ऐसा जब हो ज्ञान।
निःसंदेह वह मिथ्यादृष्टि, ज्ञानी ना पहचान॥१०.१९.३२६॥
पर द्रव्य मेरा नहीं, तत्वज्ञ निश्चित राय।
सम्यग्दर्शनरहित व्यक्ति का, ऐसा ही व्यवसाय॥१०.२०.३२७॥

जो लोग सत्य स्वरूप को नहीं जानते, वे व्यवहार की भाषा में कहते हैं—"यह बाह्य पदार्थ मेरा है।" परन्तु जो निश्चय से जानता है, वह देखता है कि एक परमाणु मात्र भी वास्तव में उसका नहीं है। जिस प्रकार कोई मनुष्य कहता है—"यह हमारा गाँव, जिला, नगर या देश है, "जबकि वे वास्तव में उसके नहीं होते, फिर भी वह मोहवश उन्हें अपना मानता है। उसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति—even ज्ञानी होकर—"यह परद्रव्य मेरा है" ऐसा मानता है, तो निःसंदेह वह मिथ्यादृष्टि होता है, क्योंकि वह आत्मा के अलावा किसी और को अपना मानता है।
इसलिए यह दृढ़ता से जानकर कि "यह मेरा नहीं है," ज्ञानी को समझना चाहिए कि परद्रव्यों में कर्तापन का भाव केवल उन लोगों का होता है जिनमें सम्यग्दर्शन नहीं है।

Those ignorant of the true meaning say "this external substance is mine" based on conventional language, But the wise, by the standpoint of the real, know that not even an atom is theirs.Just as someone claims "this is our

village, district, city, country," Though none of these are truly his, he says so due to delusion.
In the same way, if even the knowledgeable claims "this external thing is mine" and identifies with it, He, without a doubt, holds false belief. Therefore, knowing "this is not mine," the one who understands the nature of external things Knows that all such doings arise from those lacking right vision.

मिच्छत्तं जदि पयडी मिच्छादिट्ठी करेदि अप्पाणं।
तम्हा अचेदणा ते पयडी णणु कारगो पत्तो॥३२८॥
अहवा एसो जीवो पोग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्तं।
तम्हा पोग्गलदव्वं मिच्छादिट्ठी ण पुण जीवो॥३२९॥
अह जीवो पयडी तह पोग्गलदव्वं कुणंति मिच्छतं।
तम्हा दोहिं कदं तं दोण्णि वि भुंजंति तस्स फलं॥३३०॥
अह ण पयडी ण जीवो पोग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं।
तम्हा पोग्गलदव्वं मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा॥३३१॥

मिथ्यात्वं यदि प्रकृतिर्मिथ्यादृष्टिं करोत्यात्मानम्।
तस्मादचेतनाते प्रकृतिर्ननु कारका प्राप्ता॥३२८॥
अथवैष जीवः पुद्गलद्रव्यस्य करोति मिथ्यात्वम्।
तस्मात्पुद्गलद्रव्यमं मिथ्यादृष्टिर्न पुनर्जीवः॥३२९॥
अथ जीवः प्रकृतिस्तथा पुद्गलद्रव्यं कुरुतः मिथ्यात्वम्।
तस्मात् द्वाभ्यां कृतं तत् द्वावपि भुञ्जाते तस्य फलम्॥३३०॥
अथ न प्रकृतिर्न जीवः पुद्गलद्रव्यं करोति मिथ्यात्वम्।
तस्मातपुद्गलद्रव्यं मिथ्यात्वं तत्तु न खलु मिथ्या॥३३१॥

मिथ्यादृष्टि यदी करे,, मोह कर्म का काम।
तब प्रकृति कर्ता बनती, भाव अचेतन नाम॥१०.२१.३२८॥
यदि पुद्गल के मिथ्यात्व का, आत्मा करता काम।
पुद्गल मिथ्यादृष्टि बने, जीव का क्यूँ नाम? ॥१०.२२.३२९॥
जीव प्रकृति मिलकर यदि, मिथ्यात्व का हो भाव।
तब भोक्ता दोनों बने, दोनों पर प्रभाव॥१०.२३.३३०॥
पुद्गल को मिथ्यात्वरुप, दोनों का न प्रभाव।
गलत सिद्ध मिथ्यात्वरुप, पुद्गल का स्वभाव॥१०.२४.३३१॥

यदि यह मानें कि मिथ्यात्वभाव प्रकृति (मोहनीय कर्म) करती है और आत्मा को मिथ्यादृष्टि बनाती है, तो अचेतन प्रकृति ही कर्ता हो जाएगी – जो अनुचित है। यदि कहा जाए कि आत्मा पुद्गल (भौतिक द्रव्य) में मिथ्यात्व उत्पन्न करता है, तो मिथ्यात्व का दोष पुद्गल पर आएगा, न कि आत्मा पर – जो अनुचित है। यदि यह कहा जाए कि आत्मा और प्रकृति दोनों मिलकर मिथ्यात्व का कारण हैं, तो फल दोनों को भुगतना पड़ेगा – पर ऐसा कहीं नहीं कहा गया है।
और यदि कहा जाए कि न प्रकृति और न आत्मा मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, फिर तो मिथ्यात्व पुद्गलद्रव्य का स्वाभाविक गुण होगा – जो स्पष्ट रूप से गलत है।

तात्पर्य:

इन सभी विकल्पों के निषेध से यह सिद्ध होता है कि आत्मा ही अपने मिथ्यात्व भाव का कर्ता है। न वह प्रकृति करती है, न पुद्गल में उत्पन्न होता है – मिथ्यात्व आत्मा की स्वयं की कर्तृत्व शक्ति का परिणाम है।

If we accept that the state of false belief (mithyātva) is produced by *prakṛti* (i.e., deluding karma) and that it causes the soul to become deluded, then

unconscious *prakṛti* would become the doer — which is logically unacceptable. If we say that the soul generates false belief in matter (*pudgala*), then the fault of mithyātva would lie with matter, not the soul — which again is not valid. If it is said that both the soul and *prakṛti* together are the cause of mithyātva, then both would have to experience its consequences — but no such doctrine is ever stated. And if one claims that neither *prakṛti* nor the soul is responsible for generating mithyātva, then false belief would become an inherent property of matter — which is clearly erroneous.

Conclusion: By eliminating all these options, it is established that the soul itself is the doer of its own false belief. It is not caused by *prakṛti*, nor does it arise in matter — mithyātva is the direct outcome of the soul's own volitional activity.

कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जदि णाणी तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहि सुवाविज्जदि जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहिं॥३३२॥
कम्मेहि सुहाविज्जदि दुक्खाविज्जदि कम्मेहिं।
कम्मेहि य मिच्छतं णिज्जदि असंजमं चेव॥३३३॥
कम्मेहि भमाडिज्जदि उड्ढमहो चावि तिरियलोयं च।
कम्मेहि चेव किज्जदि सुहासुहं जेत्तियं किंचि॥३३४॥
जम्हा कम्मं कुव्वदि कम्मं देदि हरदि त्ति जं किंचि।
तम्हा उ सव्वजीवा अकारगा होंति आवण्णा॥३३५॥
पुरिसित्थियाहिलासी इत्थीकम्मं च पुर्सामहिलसदि।
एसा आयरियपरंपरगदा एरिसी दु सुदी॥३३६॥
तम्हा ण को वि जीवो अबंभचारी दु अम्ह उवदेसे।
जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसदि इदि भणिदं॥३३७॥
जम्हा घादेदि परं परेण घादिज्जदे य सा पायडी।
एदेणत्थेणं किर भण्णदि परघादणामेत्ति॥३३८॥
तम्हा ण को वि जीवो वधादओ अत्थि अम्ह उवदेसे।
जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं घादेदि इदि भणिदं॥३३९॥
एवं संखुवएसं जे दु परुवेंति एरिसं समणा।
तेसिं पयडी कुव्वदि अप्पा य अकारगा सव्वे॥३४०॥
अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि।
एसो मिच्छसहावो तुम्हं एयं मुणंतस्स॥३४१॥
अप्पा णिच्चोऽसंखेज्जपदेसो देसिदो दु समयम्हि।
ण वि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहिओ य कादुं जे॥३४२॥
जीवस्स जीवरुवं वित्थरदो जाण लोगमेत्तं खु।
तत्तो सो किं हीणो अहिओ य कहं कुणदि दव्वं॥३४३॥
अह जाणगो दु भावो णाणसहावेण अच्छदे त्ति मदं।
तम्हा ण वि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणदि॥३४४॥

कर्मभिस्तु अज्ञानी क्रियते ज्ञानी तथैव कर्मभिः।
कर्मभिः स्वाप्यते जागर्यते तथैव कर्मभिः॥३३२॥
कर्मभिः सुखी क्रियते दुःखी क्रियते तथैव कर्मभिः।
कर्मभिश्च मिथ्यात्वं नीयते नीयतेऽसंयमं॥३३३॥
कर्मभिर्भ्राम्यते ऊर्ध्वमधश्चापि तिर्यग्लोकं च।
कर्मभिश्चैव क्रियते शुभाशुभं यावद्यत्किञ्चित्॥३३४॥
यस्मात्कर्म करोति कर्म ददाति हरतीति यत्किञ्चित्।
तस्मात्तु सर्वजीवा अकारका भवन्त्यापन्नाः॥३३५॥
पुरुषः स्त्रयभिलाषी स्त्रीकर्म च पुरुषमभिलषति।
एषाचार्यपरम्परागतेदृशी तु श्रुतिः॥३३६॥
तस्मान्न कोऽपि जीवोऽब्रह्मचारी त्वस्माकमुपदेशे।
यस्मात्कर्म चैव हि कर्माभिलषतीति भणितम्॥३३७॥
यस्माद्धन्ति परं परेण हन्यते च सा प्रकृतिः।

एतेनार्थेन किल भण्यते परघातनामेति॥३३८॥
तस्मान्न कोऽपि जीव उपघातकोऽस्त्यस्माकमुपदेशे।
यस्मातकर्म चैव हि कर्म हन्तीति भणितम्॥३३९॥
एवं साङ्खयोपदेशं येतु प्ररुपयन्तीद्दशं श्रमणाः।
तेषां प्रकृतिः करोत्यात्मानश्चाकारकाः सर्वे॥३४०॥
अथवा मन्यसे ममात्मात्मानमात्मनः करोति।
एष मिथ्यास्वभावः तवैतज्जानतः॥३४१॥
आत्मा नित्योऽसङ्ख्येयप्रदेशो दर्शितस्तु समये।
नापि स शक्यते ततो हीनोऽधिकश्च कर्तुं यत्॥३४२॥
जीवस्य जीवरूपं विस्तरतो जानीहि लोकमात्रं खलु।
ततः स किं हीनोऽधिको वा कथं करोति द्रव्यं॥३४३॥
अथ ज्ञायकस्तु भावोज्ञानस्वभावेन तिष्ठतीति मतम्।
तस्मान्नाप्यात्मात्मानं तु स्वयमात्मानः करोति॥३४४॥

अज्ञानी भी कर्म करे, ज्ञानी कर्म का काम।
कर्म सुलावे जीवको, कर्म जगाना काम॥१०.२५.३३२॥
कर्म जीव को सुखी करे, दुख भी कर्म का काम।
मिथ्यात्व भी कर्म करे, असंयम कर्म का काम॥१०.२६.३३३॥
ऊर्ध्व या तिर्यक् लोक हो, भ्रमण कर्म का काम।
कुछ भी शुभ या अशुभ हो, सभी कर्म के काम॥१०.२७.३३४॥
करना, देना व हरना, सभ कर्म के काम।
इस से तो निश्चय हुआ, जीव न करता काम॥१०.२८.३३५॥
पुरुषवेद स्त्री कामना, स्त्रीवेद पुरुष चाह।
आचार्य ने यही कहा, परम्परा की राह॥१०.२९.३३६॥
ब्रह्मचारी है जीव सदा, ऐसा ही उपदेश।
कर्म करे कर्म की इच्छा, यही कर्म का वेष॥१०.३०.३३७॥
पर को मारे या मरे, प्रकृति का है काम।
परघातनाम कर्म कहा, प्रकृति करे तमाम॥१०.३१.३३८॥
जीव घात करता नहीं, ऐसा ही उपदेश।
कर्म ही मारे कर्म को, जीव का नहीं क्लेश॥१०.३२.३३९॥
जो श्रमण यह वर्णन करे, सांख्य मत का ज्ञान।
आत्मा तो करता नहीं, प्रकृति कर्ता मान॥१०.३३.३४०॥
आत्मा आत्मा को करे, ऐसा जब जो मान।
है मिथ्यास्वभाव यही, ऐसा तम लो जान॥१०.३४.३४१॥
असंख्यप्रदेश आत्मा नित्य, जैन दर्शन सिद्धांत।
हीन अधिक होता नहीं, आत्म सदा ही शांत॥१०.३५.३४२॥
जीव का जीव रूप से, लोकमात्र विस्तार।
फिर द्रव्य हीन या अधिक, कैसे करे विचार॥१०.३६.३४३॥
ज्ञायक सदा स्थित रहे, ज्ञायक भाव स्वभाव।
आत्मा आत्मा करे नहीं, ऐसा नहीं प्रभाव॥१०.३७.३४४॥

कर्म जीव को अज्ञानी करते है और कर्म जीव को ज्ञानी करते है, कर्म सुलाते है और कर्म ही जगाते है। कर्म सुखी करते है और कर्म ही दुखी करते है, कर्म मिथ्यात्व को प्राप्त कराते है और कर्म ही असंयम कराते है। कर्म ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, व तिर्यग्लोक में भ्रमण कराते है, शुभ और अशुभ कर्म ही कराते है। कर्म करता है, कर्म देता है, कर्म हर लेता है इस प्रकार जो कुछ भी करता है वो कर्म ही करता है इसलिए सब जीव अकारक सिद्ध होते है। पुरुषवेद कर्म स्त्री की अभिलाषी है और स्त्रीवेदकर्म पुरुष का अभिलाषी है, ऐसी यह आचार्य की परम्परा से आई हुई श्रुति है। इसलिए हमारे उपदेश में कोई भी जीव अब्रहमचारी नहीं है क्योंकि कर्म ही कर्म की अभिलाषा करता है ऐसा कहा है। और जो पर को मारता है या पर के द्वारा मारा जाता है वह प्रकृति है, इस अर्थ में परघातनाम कर्म कहा जाता है। इसलिए हमारे उपदेश में कोई भी जीव उपघातक नहीं है क्योंकि कर्म ही कर्म को मारता है ऐसा कहा है। इस प्रकार सांख्यमत का उपदेश श्रमण प्ररुपित करते हैं उनके मत में प्रकृति ही करती है और आत्मा तो सब अकारक है ऐसा सिद्ध होता है। अथवा यदि तुम यह मानते हो कि मेरा आत्मा अपने आत्मा को करता है तो ऐसा जाननेवाला यह तुम्हारा मिथ्या स्वभाव है। क्योंकि सिद्धांत में आत्मा को नित्य, असंख्यात प्रदेशी बताया गया है, इससे वह हीन या अधिक नहीं किया जा सकता। और विस्तार से भी जीव का रुप निश्चय से लोकमात्र जानो, उससे क्या वह हीन अधिक होता है? तब फिर आत्मा द्रव्य को कैसे करता है?अथवा यदि ज्ञायक भाव तो ज्ञान स्वभाव में स्थित रहता है ऐसा माना जाये तो इससे भी आत्मा स्वयं अपने आत्मा को नहीं करता यह सिद्ध होगा।

Karma makes the soul ignorant, and karma also makes the soul knowledgeable. Karma puts one to sleep, and karma also awakens. Karma brings happiness, and karma also causes sorrow. Karma leads to false belief (mithyātva), and karma also leads to lack of restraint (asaṁyama).

Karma causes the soul to wander in the upper world (ūrdhvaloka), lower world (adholoka), and middle realm (tiryagloka). Both auspicious and inauspicious karmas are responsible for these experiences. Karma acts, karma gives, and karma also takes away — thus, whatever happens is done by karma alone. Therefore, all souls are proven to be non-doers (akāraka).

The karma of a male inclination (puruṣaveda karma) desires the female, and the karma of a female inclination (strīveda karma) desires the male — such is the tradition passed down by the Ācāryas (spiritual teachers). Therefore, in our teaching, no soul is truly celibate, because it is karma that desires karma, so it is said.

And one who kills another, or is killed by another — that is nature (prakṛti); in this sense, karma is said to be 'paraghātanāma' (destructive to others). Thus, in our teaching, no soul is a true killer, because it is karma that harms karma — so it is said.

In this way, the Sāṅkhya philosophy is expounded by the Śramaṇas (ascetics). In their view, it is prakṛti (nature) that acts, and the soul is always a non-doer — this is what is proven.

Alternatively, if you believe that the soul acts upon itself, then know that this is your false perception of the self. For, in the doctrine, the soul is described as eternal and consisting of infinite space-points (asaṅkhyāta pradeśī); hence, it can neither be diminished nor increased.

And even in its expanse, the nature of the soul is certainly limited to the universe (loka) — can that make it more or less? Then how can the soul act upon the substance of the soul?

Or, if it is accepted that the knowing mode (jñāyaka bhāva) remains established in the nature of knowledge, then even by this, it is proven that the soul does not act upon itself.

केहिंचि दु पज्जएहिं विणस्सए णेव केहिंचि दु जीवो।
जम्हा तम्हा कुव्वदि सो वा अण्णो व णेयंतो॥३४५॥
केहिंचि दु पज्जएहिं विणस्सए णेव केहिंचि दु जीवो।
जम्हा तम्हा वेदेदि सो वा अण्णो व णेयंतो॥३४६॥
जो चेव कुणदि सो चिय ण वेदए जस्स एस सिद्धंतो।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो॥३४७॥
अण्णो करेदि अण्णो परिभुंजदि जस्स एस सिद्धंतो।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो॥३४८॥

कैश्चित्तु पर्यायैर्विनश्यति नैव कैश्चित्तु जीवः।
यस्मात्तस्मात्करोति स वा अन्यो वा नैकान्तः॥३४५॥
कैश्चित्तु पर्यायैर्विनश्यति नैव कैश्चित्तु जीवः।
यस्मात्तस्माद्वेदयते स वा अन्यो वा नैकान्तः॥३४६॥
यश्चैव करोति स चैव न वेदयते यस्य एष सिद्धान्तः।
स जीवो ज्ञातव्यो मिथ्यादृष्टिरनार्हतः॥३४७॥
अन्यः करोत्यन्यः परिभुंक्ते यस्य एष सिद्धान्तः।
स जीवो ज्ञातव्यो मिथ्यादृष्टिरनार्हतः॥३४८॥

जीव द्रव्य हो नष्ट नहीं, नष्ट होत पर्याय।
करता भोगे एक अन्य, न एकल व्यवसाय॥१०.३८.३४५॥
जीव द्रव्य हो नष्ट नहीं, नष्ट होत पर्याय।
जो भोगे या अन्य जन, न एकल व्यवसाय॥१०.३९.३४६॥
करता वह ना भोगता, ऐसा जिसका ज्ञान।
मिथ्या दृष्टि अजैन है, ऐसा उसको मान॥१०.४०.३४७॥
दूजा कर भोगे दिगर,ऐसा जिसका ज्ञान।
मिथ्या दृष्टि अजैन है, ऐसा उसको मान॥१०.४१.३४८॥

जीव द्रव्य से कभी नष्ट नहीं होता, केवल उसकी पर्यायें नष्ट होती हैं।
इसलिए जो कर्म करता है वही करता है या कोई और करता है – ऐसा कोई एकांत निर्णय नहीं किया जा सकता।
जीव द्रव्य से कभी नष्ट नहीं होता, केवल पर्यायें ही नष्ट होती हैं।
इसलिए जो भोगता है वही भोगता है या कोई और – ऐसा कोई एक निश्चित मत नहीं है।
जिसका सिद्धांत है कि जो करता है वही भोगता नहीं है, वह जीव मिथ्यादृष्टि और अरिहंतों से विपरीत मत वाला है।
जिसका मत है कि कोई और करता है और कोई और भोगता है, वह भी मिथ्यादृष्टि और अरिहंतों से विपरीत मत वाला है।

The soul never perishes as substance, only through certain modes (modifications).
Hence, whether the doer is the same as the experiencer or someone else — this cannot be asserted with certainty.

The soul never perishes as a substance, only some of its modifications do.
So whether the enjoyer is the same as the doer or someone else — this cannot be decisively affirmed.
One who holds the view that the doer is not the enjoyer — that soul is to be known as misguided, of false view, and opposed to the teachings of the Arhats.
And one who says that someone else does and someone else enjoys — he too holds a false view and is outside the path shown by the Arhats.

जह सिप्पिओ दु कम्मं कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो वि य कम्मं कुव्वदि ण य तम्मओ होदि॥३४९॥
जह सिप्पिओ दु करणेहिं कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो करणेहिं कुव्वदि ण य तम्मओ होदि॥३५०॥
जह सिप्पिओ दु करणाणि गिण्हदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो करणाणि दु गिण्हदि ण य तम्मओ होदि॥३५१॥
जह सिप्प दु कम्मफलं ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो कम्मफलं भुंजदि ण य तम्मओ होदि॥३५२॥
एवं ववहारस्स दु वत्तव्वं दरिसणं समासेण।
सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकदं जं होदि॥३५३॥
जह सिप्पिओ दु चेट्ठं कुव्वदि हवदि य तहा अणण्णो से।
तह जीवो वि य कम्मं कुवदि हवदि य अणण्णो से॥३५४॥
जह चेट्ठं कुव्वंतो दु सिप्पिओ णिच्चदुक्खिओ होदि।
तत्तो सिया अणण्णो तह चेट्ठंतो दुही जीवो॥३५५॥

यथा शिल्पिकः तु कर्म करोति न च स तु तन्मयः भवति।
तथा जीवः अपि च कर्म करोति न च तन्मयः भवति॥३४९॥
यथा शिल्पिकः तु करणैः करोति न च स तु तन्मयः भवति।
तथा जीवः करणैः करोति न च तन्मयः भवति॥३५०॥
यथा शिल्पिकः तु करणानि गृह्णाति न च स तु तन्मयः भवति।
तथा जीवः करणानि तु गृह्णाति न च तन्मयः भवति॥३५१॥
यथा शिल्पी तु कर्मफलम् भुंक्ते न च स तु तन्मयः भवति।
तथा जीवः कर्मफलम् भुंक्ते न च तन्मयः भवति॥३५२॥
एवं व्यवहारस्य तु वक्तव्यं दर्शनं समासेन।
शृणु निश्चयस्य वचनं परिणामकृतं तु यद्भवति॥३५३॥
यथा शिल्पिकः तु चेष्टां करोति भवति च तथाऽनन्यः तस्याः।
तथा जीवः अपि च कर्म करोति भवति चानन्यः तस्मात्॥३५४॥
यथा चेष्टां कुर्वाणः तु शिल्पिकः नित्यदुःखितः भवति।
तस्मात् च स्यात् अनन्यः तथा चेष्टमानः दुःखी जीवः॥३५५॥

स्वर्णकार कुण्डल गढ़े, खुद ना कुंडल होय।
जीव कर्म करता वही, निज को नहीं डुबाय॥१०.४२.३४९॥
स्वर्णकार तन्मय नहीं, करता करण प्रयोग।
जीव कर्म साधन सहित, खुद का ना उपयोग॥१०.४३.३५०॥
करण को ग्रहण करता, तन्मय नहीं स्वर्णकार।
करण को ग्रहण करता, जीव न तन्मय विचार॥१०.४४.३५१॥
कर्म का जब फल भोगता, तन्मय नहीं स्वर्णकार।
पापादि फल भोगता, जीव न तन्मय विचार॥१०.४५.३५२॥
संक्षेप में जो मत सुना, कथन है व्यवहार।
परिणाम विषय मत सुनो, निश्चय का विचार॥१०.४६.३५३॥
जैसे शिल्पी अनन्य है, चेष्टारूप परिणाम।

वैसे जीव भी अन्य है, कर्म भिन्न परिणाम॥१०.४७.३५४॥
जैसे शिल्पी अनन्य है, दुखरूप जब परिणाम।
वैसे जीव भी अन्य है, दुखरूप जब परिणाम॥१०.४८.३५५॥

जैसे शिल्पी (स्वर्णकार) कुण्डल आदि बनाता है पर स्वयं कुण्डल नहीं बनता, उसी तरह जीव कर्म करता है लेकिन वह कर्ममय (कर्म का रूप) नहीं होता।
जैसे शिल्पी उपकरणों द्वारा कार्य करता है पर वह उपकरण नहीं बनता, उसी प्रकार जीव इन्द्रियों और साधनों से कर्म करता है पर वह उनका रूप नहीं होता।
जैसे शिल्पी उपकरणों को ग्रहण करता है लेकिन उनमें लीन नहीं होता, उसी प्रकार जीव करणों को ग्रहण करता है लेकिन करणमय नहीं होता।
जैसे शिल्पी कर्म का फल भोगता है लेकिन वह उस फल में लीन नहीं होता, उसी प्रकार जीव भी कर्मफल का भोग करता है पर वह उसमें तन्मय नहीं होता।
इस प्रकार यह व्यवहारनय का संक्षिप्त दृष्टिकोण है, अब निश्चयनय का वचन सुनो – जो परिणाम के आधार पर होता है।
जैसे शिल्पी क्रिया करता है पर वह उस क्रिया से एक नहीं होता, उसी प्रकार जीव भी कर्म करता है पर वह कर्म से एक नहीं होता।
जैसे कार्य करते हुए शिल्पी नित्य दुखी होता है, फिर भी वह उस दुख से भिन्न है, उसी प्रकार कर्म करते हुए जीव भी दुखी होता है, पर वह दुख से भिन्न है।

Just as a goldsmith crafts ornaments but does not become the ornament himself, So too, the soul performs actions but is not transformed into those actions.
Just as a craftsman works using tools but does not become the tools, In the same way, the soul uses instruments (mind, speech, body) but is not identical with them.
Just as the craftsman grasps tools but is not the tools themselves, The soul too uses instruments but does not become those instruments.
Just as the artisan enjoys the result of his labor but does not become the fruit itself,So does the soul experience the fruits of karma without becoming them.
This is the summary of the standpoint of convention (vyavahār). Now listen to the doctrine of the absolute standpoint (niścaya), which is based on transformation.
Just as the artisan performs work yet remains distinct from the action, So also the soul performs karma but remains distinct from it.
Just as the artisan experiences constant pain in work yet is separate from it, So too, the soul suffers while acting but remains distinct from that suffering.

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।
तह जाणगो दु ण परस्स जाणगो जाणगो सो दु॥३५६॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।
तह पासगो दु ण परस्स पासगो पासगो सो दु॥३५७॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।
तह संजदो दु ण परस्स संजदो संजदो सो दु॥३५८॥
जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।
तह दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसणं त तु॥३५९॥
एवं तु णिच्छयणयस्स भासिदं णाणदंसणचरित्ते।
सुणु ववहारणयस्स य वत्तव्वं से समासेण॥३६०॥
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं जाणदि णादा वि सएण भावेण॥३६१॥
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं पस्सदि जीवो वि सएण भावेण॥३६२॥
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं विजहदि णादा वि सएण भावेण॥३६३॥
जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं सद्दहदि सम्मदिट्ठी सहावेण॥३६४॥
एवं ववहारस्स दु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते।
भणिदो अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णादव्वो॥३६५॥

यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति।
तथा ज्ञायकस्तु न परस्य ज्ञायको ज्ञायकः स तु॥३५६॥
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति।
तथा दर्शकस्तु न परस्य दर्शको दर्शकः स तु॥३५७॥
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति।
तथा संयतस्तु न परस्य संयतः संयतः स तु॥३५८॥
यथा सेटिका तु न परस्य सेटिका सेटिका च सा भवति।
तथा दर्शनं तु न परस्य दर्शनं दर्शनं तत्तु॥३५९॥
एवं तु निश्चयनयस्य भाषितं ज्ञानदर्शनचरित्रे।
शृणु व्यवहारनयस्य च वक्तव्यं तस्य समासेन॥३६०॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन।
तथा परद्रव्यं जानाति ज्ञातापि स्वकेन भावेन॥३६१॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन।
तथा परद्रव्यं पश्यति जीवोऽपि स्वकेन भावेन॥३६२॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन।
तथा परद्रव्यं विजहाति ज्ञातापि स्वकेन भावेन॥३६३॥
यथा परद्रव्यं सेटयति सेटिकात्मनः स्वभावेन।
तथा परद्रव्यं श्रद्धत्ते सम्यग्दृष्टिः स्वभावेन॥३६४॥
एवं व्यवहारस्य तु विनिश्चयो ज्ञानदर्शनचरित्रे।

भणितोऽन्येष्वपि पर्यायेषु एवमेव ज्ञातव्यः॥३६५॥

जैसे कलई पर नहीं, कलई कलई जान।
वैसे ज्ञायक पर नहीं, ज्ञायक ज्ञायक मान॥१०.४९.३५६॥
जैसे कलई पर नहीं, कलई कलई जान।
वैसे दर्शक पर नहीं, दर्शक दर्शक मान॥१०.५०.३५७॥
जैसे कलई पर नहीं, कलई कलई जान।
वैसे संयत पर नहीं, संयत संयत मान॥१०.५१.३५८॥
जैसे कलई पर नहीं, कलई कलई जान।
वैसे दर्शन पर नहीं, दर्शन दर्शन मान॥१०.५२.३५९॥
ज्ञान दर्शन चारित्र में, है कथन निश्चय जान।
संक्षेप में अब तुम सुनो, व्यवहार कथन ज्ञान॥१०.५३.३६०॥
पर द्रव्य को सफेद करे, कलई का व्यवहार।
पर द्रव्य को है जानता, ज्ञाता का व्यापार॥१०.५४.३६१॥
पर द्रव्य को सफेद करे, कलई का व्यवहार।
पर द्रव्य को है देखता, ज्ञाता का व्यापार॥१०.५५.३६२॥
पर द्रव्य को सफेद करे, कलई का व्यवहार।
पर द्रव्य को त्यागता, ज्ञाता का व्यापार॥१०.५६.३६३॥
पर द्रव्य को सफेद करे, कलई का व्यवहार।
पर द्रव्य का श्रद्धान है, ज्ञाता का व्यापार॥१०.५७.३६४॥
ज्ञान दर्शन चारित्र में, व्यवहारनय को जान।
अन्य पर्याय में उस तरह, करलो निश्चय ज्ञान ॥१०.५८.३६५॥

जैसे कलई पर की नहीं है कलई तो कलई ही है, उसी प्रकार ज्ञायक पर का नहीं है वो तो ज्ञायक ही है। जैसे कलई पर की नहीं है कलई तो कलई ही है, उसी प्रकार दर्शक पर का नहीं है वो तो दर्शक ही है। जैसे कलई पर की नहीं है कलई तो कलई ही है, उसी प्रकार संयत पर का नहीं है वो तो संयत ही है। जैसे कलई पर की नहीं है कलई तो कलई ही है, उसी प्रकार श्रद्धान पर का नहीं है वो तो श्रद्धान ही है। इस प्रकार ज्ञान दर्शन चारित्र में निश्चयनय का कथन है और उस संबंध में संक्षेप से व्यवहारनय का कथन सुनो। जैसे कलई अपने व्यवहार से पर द्रव्य को सफेद करती है उसी प्रकार ज्ञाता भी अपने स्वभाव से पर द्रव्य को जानता है। जैसे कलई अपने व्यवहार से पर द्रव्य को सफेद करती है उसी प्रकार जीव भी अपने स्वभाव से पर द्रव्य को देखता है। जैसे कलई अपने व्यवहार से पर द्रव्य को सफेद करती है उसी प्रकार ज्ञाता भी अपने स्वभाव से पर द्रव्य को त्यागता है। जैसे कलई अपने व्यवहार से पर द्रव्य को सफेद करती है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भी अपने स्वभाव से पर द्रव्य का श्रद्धान करता है। इस प्रकार ज्ञान दर्शन चारित्र में व्यवहारनय का निर्णय कहा है; अन्य पर्यायों में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

Just as tin coating (kalai) is not *of* another, yet it is still called "tin coating," similarly, the knower is not of another, yet he is the knower.SEPJust as tin coating is not of another, yet it is still called "tin coating," similarly, the seer is not of another, yet he is the seer.SEPJust as tin coating is not of another, yet it is still called "tin coating," similarly, the restrained (one practicing self-restraint) is not of another, yet he is the restrained.SEPJust as tin coating is not

of another, yet it is still called "tin coating," similarly, faith (darshan) is not of another, yet it is faith itself.

Thus, knowledge, faith, and conduct are explained from the *nishchaya naya* (absolute standpoint); now listen briefly to their expression from the *vyavahara naya* (conventional standpoint).

Just as tin, by its own nature, coats another substance to make it white, similarly the knower, by his own nature, knows other substances.SEP Just as tin whitens another substance, similarly the soul, by its own nature, perceives other substances. Just as tin whitens another substance, similarly the knower, by his own nature, renounces other substances.SEP Just as tin whitens another substance, similarly the one with right belief (samyak drishti), by his own nature, has faith in other substances.

In this way, knowledge, faith, and conduct are described from the standpoint of conventional view (vyavahara naya); in all other modes too, understand it in the same way.

दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे विसए।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु विसएसु॥३६६॥
दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे कम्मे।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तम्हि कम्मम्हि॥३६७॥
दंसणणाणचरित्तं किंचि वि णत्थि दु अचेदणे काए।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु काएसु॥३६८॥
णाणस्स दंसणस्स व भणिदो घादो तहा चरित्तस्स।
ण वि तहिं पोग्गलदव्वस्स को वि घादो दु णिद्दिट्ठो॥३६९॥
जीवस्स जे गुणा केइ णत्थि खलु ते परेसु दव्वेसु।
तम्हा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु॥३७०॥
रागो दोसो मोहो जीवस्सेव य अणण्णपरिणामा।
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादि॥३७१॥

दर्शनज्ञानचारित्रं किञ्चिदपि नास्ति त्वचेतने विषये।
तस्मात्किं हन्ति चेतयिता तेषु विषयेषु॥३६६॥
दर्शनज्ञानचारित्रं किञ्चिदपि नास्ति त्वचेतने कर्मणि।
तस्मात्किं हन्ति चेतयिता तत्र कर्मणि ॥३६७॥
दर्शनज्ञानचारित्रं किञ्चिदपि नास्ति त्वचेतने काये।
तस्मात्किं हन्ति चेतयिता तेषु कायेषु॥३६८॥
ज्ञानस्य दर्शनस्य च भणितो घातस्तथा चारित्रस्य।
नापि तत्र पुद्गलद्रव्यस्य कोऽपि घातस्तु निर्दिष्टः॥३६९॥
जीवस्य ये गुणाः केचिन्न सन्ति खलु ते परेषु द्रव्येषु।
तस्मात्सम्यग्दृष्टेर्नास्ति रागस्तु विषयेषु॥३७०॥
रागो द्वेषो मोहो जीवस्यैव चानन्यपरिणामाः।
एतेन कारणेन तु शब्दादिषु न सन्ति रागादयः॥३७१॥

दर्शन ज्ञान चरित्र नहीं, जड़ की जब है बात।
आत्मा कैसे कर सके, अचेतन में संघात॥१०.५९.३६६॥
दर्शन ज्ञान चरित्र नहीं, कर्म की जब है बात।
आत्मा कैसे कर सके, कर्मों में संघात॥१०.६०.३६७॥
दर्शन ज्ञान चरित्र नहीं, तन की जब है बात।
आत्मा कैसे कर सके, कायों में संघात॥१०.६१.३६८॥
ज्ञान दर्शन चारित्र में, हो जाये जब घात।
किंचित मात्र भी पुद्गल में, होता नहीं संघात॥१०.६२.३६९॥
आत्मा के जो गुण है, पर द्रव्य में विराग।
इसलिए सम्यग्दृष्टि मे, विषयप्रति नहीं राग॥१०.६३.३७०॥
राग द्वेष व मोह है, जीव अनन्य परिणाम।
इसलिए रागादि नहीं, परद्रव्य का काम॥१०.६४.३७१॥

Right vision (darshan), knowledge (jnana), and conduct (charitra) are not present even in the slightest degree in insentient objects—so how can the soul cause any harm to such objects?

Right vision, knowledge, and conduct are not present even slightly in karmic matter—so how can the soul cause any harm to karma?

Right vision, knowledge, and conduct are not found even in the slightest degree in the physical body—so how can the soul cause any harm to bodily forms?

Even when there is destruction of knowledge, vision, or conduct, there is still no destruction of the material substance (pudgala).

The qualities that belong to the soul are not present in any external (non-sentient) substance.Therefore, one with right vision has no attachment (rāga) toward sensory objects.

Attachment, aversion, and delusion are exclusive modifications of the soul alone.For this reason, attachment and the like are not present in objects such as sound, etc.

(Thus, rāga–dveṣa are neither found in the soul with right vision nor in inert objects—they are only modifications of the ignorant soul.)

अण्णदविएण अण्णधवियस्स णो कीरए गुणुप्पाओ।
तम्हा दु सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण॥३७२॥

अन्यद्रव्येणान्यद्रव्यस्य न क्रियते गुणोत्पादः।
तस्मात्तु सर्वद्रव्याण्युत्पद्यन्ते स्वभावेन॥३७२॥

अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य की, उत्पत्ति के ना भाव।
सभी द्रव्य होते उत्पन्न, अपना ही स्वभाव॥१०.६५.३७२॥

अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य के गुण की उत्पत्ति नहीं की जा सकती, सर्व द्रव्य अपने अपने स्वभाव से उत्पन्न होते है।

The qualities of one substance cannot be produced by another substance.
Therefore, all substances manifest according to their own inherent nature.

णिंदिदसंथुदवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुगाणि।
ताणि सुणिदूण तूसदि य पुणो अहं भणिदो॥३७३॥
पोग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणदं तस्स जदि गुणो अण्णो।
तम्हा ण तुमं भणिदो किंचि वि किं रुससि अबुद्धो॥३७४॥
असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणदि सुणसु मं ति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं सोदविसयमागदं सद्दं॥३७५॥
असुहं सुहं व रूवं ण तं भणदि पेच्छ मं ति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं चक्खुविसयमागदं रुवं॥३७६॥
असुहो सुहो व गंधो ण तं भणदि जिग्घ मं ति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं घाणविसयमागदं गंधं॥३७७॥
असुहो सुहो व रसो ण तं भणदि रसय मं ति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं रसणविसयमागदं तु रसं॥३७८॥
असुहो सुहो व फासो ण तं भणदि फुससु मं ति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं कायविसयमागदं फासं॥३७९॥
असुहो सुहो व गुणो ण तं भणदि बुज्झ मं ति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं तु गुणं॥३८०॥
असुहं सुहं व दव्वं ण तं भणदि बुज्झ मं ति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं दव्वं॥३८१॥
एयं तु जाणिऊणं उवसमं णेव गच्छदे मूढो।
णिग्गहमणा परस्स य सयं च बुद्धिं सिवमपत्तो॥३८२॥

निन्दितसंस्तुतवचनानि पुद्गलाः परिणमन्ति बहुकानि।
तानि श्रुत्वा रुष्यति तुष्यति च पुनरहं भणितः॥३७३॥
पुद्गलद्रव्यं शब्दत्वपरिणतं तस्य यदि गुणोऽन्यः।
तस्मान्न त्वं भणितः किञ्चिदपि किं रुष्यसि अबुद्धः॥३७४॥
अशुभः शुभो वा शब्दो न त्वां भणति शृणु मामिति स एव।
न चैति विनिग्रहीतुं श्रोत्रविषयमागतं शब्दम्॥३७५॥
अशुभं शुभं वा रूपं न त्वां भणति पश्य मामिति स एव।
न चैति विनिग्रहीतुं चक्षुर्विषयमागतं रूपम्॥३७६॥
अशुभः शुभो वा गन्धो न त्वां भणति जिघ्र मामिति स एव।
न चैति विनिग्रहीतुं घ्राणविषयमागतं गन्धम्॥३७७॥
अशुभः शुभो वा रसः न त्वां भणति रसय मामिति स एव।
न चैति विनिग्रहीतुं रसना विषयमागतं रसं॥३७८॥
अशुभः शुभो वा स्पर्शो न त्वां भणति स्पृश मामिति स एव।
न चैति विनिग्रहीतुं कायविषयमागतं स्पर्शम्॥३७९॥
अशुभः शुभो वा गुणः न त्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव।
न चैति विनिग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं गुणम्॥३८०॥
अशुभं शुभं वा द्रव्यं न त्वां भणति बुध्यस्व मामिति स एव।
न चैति विनिग्रहीतुं बुद्धिविषयमागतं द्रव्यम्॥३८१॥
एतत् तु ज्ञात्वा उपशमं नैव गच्छति मूढः।

विनिग्रहमनाः परस्य च स्वयं च बुद्धिं शिवामप्राप्तः॥३८२॥

वचनी पुद्गल परिणमित, निन्दा बहु बखान।
मूढ माने कहा मुझे, राग द्वेष की खान॥१०.६६.३७३॥
शब्द पुद्गल परिणमित, गुणान्य तुझसे जान।
तुझसे कुछ भी नहीं कहा, क्रोध करे अज्ञान॥१०.६७.३७४॥
दाब सुनने का नहीं, शुभो अशुभ संवाद।
आत्मा तो जाती नहीं, सुन के वाद विवाद॥१०.६८.३७५॥
देख मुझे दबाव नहीं, शुभ अशुभ हो दृश्य।
आत्मा तो जातो नहीं, चाहे दृश्य अदृश्य॥१०.६९.३७६॥
सूँघ मुझे दबाव नहीं, गंध रहे दुर्गंध।
आत्मा तो लेती नहीं, घ्राण इन्द्रिय गंध॥१०.७०.३७७॥
दाब चखने का नहीं, मीठा खट्टा पान।
आत्मा तो चखती नहीं, रसना की ये शान॥१०.७१.३७८॥
दाब छूने का नहीं, स्पर्श ग्रहण जब काम।
आत्मा तो करती नहीं, इन्द्रिय स्पर्शन नाम॥१०.७२.३७९॥
आवश्यक गुण जान ना, बुद्धियुक्त यह ज्ञान।
आत्मा तो ज्ञाता स्वयं, च्युत न होता स्थान॥१०.७३.३८०॥
द्रव्य जान ना आवश्यक , बुद्धियुक्त है ज्ञान।
आत्मा तो ज्ञाता स्वयं, च्युत न होता स्थान॥१०.७४.३८१॥
शान्ति को पाता नहीं, कैसा यह अज्ञान।
शिव बुद्धि मिलती नहीं, पर को अपना मान॥१०.७५.३८२॥

बहुत प्रकार के निन्दा और स्तुति के वचन रूप में पुद्गल परिणमित होते हैं; उन्हें सुनकर अज्ञानी जीव "मुझसे कहा" ऐसा मानकर रोष और संतोष करता है।
पुद्गल द्रव्य यदि शब्द रूप से परिणमित हुआ है और उसका गुण तुझसे भिन्न है, तो हे अज्ञानी! तुझसे कुछ नहीं कहा गया है – फिर तू क्रोध क्यों करता है?
शुभ या अशुभ शब्द यह नहीं कहता कि "तू मुझे सुन", और आत्मा भी श्रोत्र विषयक शब्द को ग्रहण करने के लिए अपने स्थान से नहीं जाता।
शुभ या अशुभ रूप यह नहीं कहता कि "तू मुझे देख", और आत्मा भी चक्षु विषयक रूप को ग्रहण करने नहीं जाता।
शुभ या अशुभ गंध यह नहीं कहती कि "तू मुझे सूँघ", और आत्मा भी घ्राण विषयक गंध को ग्रहण करने नहीं जाता।
शुभ या अशुभ रस यह नहीं कहता कि "तू मुझे चख", और आत्मा भी रसना विषयक रस को ग्रहण करने नहीं जाता।
शुभ या अशुभ स्पर्श यह नहीं कहता कि "तू मुझे स्पर्श कर", और आत्मा भी काय विषयक स्पर्श को ग्रहण करने नहीं जाता।
शुभ या अशुभ गुण यह नहीं कहता कि "तू मुझे जान", और आत्मा भी बुद्धि विषयक गुण को ग्रहण करने नहीं जाता।
शुभ या अशुभ द्रव्य यह नहीं कहता कि "तू मुझे जान", और आत्मा भी बुद्धि विषयक द्रव्य को ग्रहण करने नहीं जाता।

ऐसा जानने के बाद भी मूढ़ जीव उपशम को प्राप्त नहीं होता, और पर को अपना मानकर वह शिवबुद्धि को प्राप्त नहीं कर पाता।

Many words—of praise and blame—are simply transformations of matter (pudgala); yet the ignorant soul thinks "it is said to me," and reacts with attachment or aversion.
If sound is just a property of matter, and its qualities are different from you,
Then nothing was said to you; why be angry, O ignorant one?
Neither auspicious nor inauspicious sound says "Hear me," nor does the soul go to grasp it through the ear.
Neither good nor bad form says "See me," nor does the soul move to perceive it through the eye.
Neither pleasant nor unpleasant smell says "Smell me," nor does the soul approach it through the nose.
Neither sweet nor bitter taste says "Taste me," nor does the soul reach for it via the tongue.
Neither harsh nor soft touch says "Touch me," nor does the soul go to receive it through the body.
Neither noble nor vile quality says "Understand me," nor does the soul move through intellect to grasp it.
No external substance says "Know me," nor does the soul depart from its station to comprehend it.
Yet the fool, failing to grasp this, never attains calmness or true wisdom, for he grasps others as his own.

कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं।
तत्तो णियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं॥३८३॥
कम्मं जं सुहमसुहं जम्हि य भावम्हि वज्झदि भविस्सं।
तत्तो णियत्तदे जो सो पच्चखाणं हवदि चेदा॥३८४॥
जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेयवित्थरविसेसं।
तं दोसं जो चेददिसो खलु आलोयणं चेदा॥३८५॥
णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वदि णिच्चं पडिक्कमदि जो य।
णिच्चं आलोचेयदि सो हु चरित्तं हवदि चेदा॥३८६॥

कर्म यत् पूर्वकृतं सुखदुःखान्यन्यविस्तरविशेषयुक्तम्।
तस्मात् निवर्तते आत्मा यः स प्रतिक्रमणं स्मृतम्॥३८३॥
कर्म यत् सुखदुःखरूपं यस्मिन् भावे निषिद्धं भविष्यति।
तस्मात् निवर्तते यः स पञ्चाख्यानं भवति चेत्॥३८४॥
यत् सुखदुःखरूपं निर्दिष्टं सम्यगन्यविस्तरविशेषयुक्तम्।
तं दोषं यः चेतसि द्रष्टुं शीलयति स आलोचनं स्मृतम्॥३८५॥
नित्यं पञ्चाख्यानं करोति, नित्यं प्रतिक्रमणं च यः।
नित्यं आलोचयति च यः स एव चरित्रं भवति चेत्॥३८६॥

कर्म शुभ अशुभ पूर्व के, किए अनेक प्रकार।
आत्मा उनसे दूर रहे, प्रतिक्रमण आचार॥१०.७६.३८३॥
शुभ अशुभ कर्म भविष्य के, बंध भाव जिस जान।
अलग करे उस भाव से, आत्मा प्रत्याखान॥१०.७७.३८४॥
वर्तमान शुभ अशुभ कर्म, नाना करे प्रकार।
भाव त्याग कर्तृत्व करे, आलोचना विचार॥१०.७८.३८५॥
प्रतिक्रमण व आलोचना, सदा ही प्रत्याख्यान।
आत्मा को उस जानना, चारित्रिक पहचान॥१०.७९.३८६॥

पूर्वकृत जो अनेक प्रकार के विस्तारयुक्त शुभाशुभ कर्म हैं, उनसे जो आत्मा स्वयं को निवृत्त करता है, वही प्रतिक्रमण कहलाता है।
भविष्य में जिस भाव से शुभ या अशुभ कर्म बंधेगा, उस भाव से जो आत्मा निवृत्त होता है, वह प्रत्याख्यान है।
वर्तमान में उदय में आए जो विस्तारयुक्त शुभ या अशुभ कर्म हैं, उनके दोष को जो आत्मा चेतता है – अर्थात् उसका कर्तापन छोड़ देता है – वह आलोचना है।
जो आत्मा नित्य प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना करता है – वही चेतन रूप में चारित्र कहलाता है।

The past actions—whether virtuous or non-virtuous, and of various types—
When the soul withdraws itself from them, that is known as *Pratikraman* (repentance).
That intent or state of mind by which virtuous or non-virtuous karma will bind in the future—When the soul refrains from that, it is called *Pratyakhyan* (renunciation).

When presently arising virtuous or non-virtuous karmas of various types are recognized as faults—And the soul relinquishes all sense of doership—that is *Alochana* (introspective confession).
One who constantly engages in pratikraman, pratyakhyan, and alochana—
Such a soul, aware and detached, is said to be truly in *Charitra* (conduct).

वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं कुणदि जो दु कम्मफलं।
सो तं पुणो वि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं॥३८७॥
वेदंतो कम्मफलं मए कदंमुणदि जो दु कम्मफलं।
सो तं पुणो वि बंधदि वीयं दुकेखस्स अट्ठविहं॥३८८॥
वेदंतो कम्मफलं सुहिदो य हवदि जो चेदा।
सो तं पुणो वि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं॥३८९॥

वेदयमानः कर्मफलमात्मानं करोति यस्तु कर्मफलम्।
स तत्पुनरपि बध्नाति बीजं दुःखस्याष्टविधम्॥३८७॥
वेदयमानः कर्मफलं मया कृतं जानाति यस्तु कर्मफलम्।
स तत्पुनरपि बध्नाति बीजं दुःखस्याष्टविधम्॥३८८॥
वेदयमानः कर्मफलं सुखितो दुःखितश्च भवति यश्चेतयिता।
स तत्पुनरपि बध्नाति बीजं दुःखस्याष्टविधम्॥३८९॥

वेदन करता कर्म फल, फल को निजरुप मान।
आठ कर्म को बांधता, आगम का यह ज्ञान॥१०.८०.३८७॥
वेदन करता कर्म फल, कर्ता स्वयं को मान।
आठ कर्म को बांधता, आगम का यह ज्ञान॥१०.८१.३८८॥
वेदन करता कर्म फल, दुख सुख अपना मान।
आठ कर्म को बांधता, आगम का यह ज्ञान॥१०.८२.३८९॥

जो आत्मा कर्मफल का वेदन करते हुए उस फल को स्वयं का मानता है, वह आठ प्रकार के दुःखरूप कर्मों का बीज पुनः बांधता है।
जो आत्मा कर्मफल का वेदन करते हुए यह समझता है कि 'यह फल मैंने किया है', वह भी आठ प्रकार के दुःखदायक कर्मों को पुनः बांधता है।
जो आत्मा सुख-दुःख का अनुभव करते हुए उसे अपना मानता है, वह भी आठ प्रकार के दुःखरूप कर्मों को पुनः बांधता है।

The one who experiences the fruits of karma and considers them as his own—
He binds again the seed of eight types of karmas that bring suffering.
The one who experiences karma's fruit and believes, "I am the doer of this"—
He too binds again the eightfold seed of suffering.
The one who feels happiness or sorrow from karma's outcome and identifies with it—He again binds the eight types of karmas that result in suffering.

सत्थं णाणं ण हवदि जम्हा सत्थं ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा बेंति॥३९०॥
सद्दो णाणं ण हवदि जम्हा सद्दो ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा बेंति॥३९१॥
रूवं णाणं ण हवदि जम्हा रूवं ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा बेंति॥३९२॥
वण्णो णाणं ण हवदि जम्हा वण्णो ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं वण्णं जिणा बेंति॥३९३॥
गंधो णाणं ण हवदि जम्हा गंधो ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं गंधं जिणा बेंति॥३९४॥
ण रसो दु हवदि णाणं जम्हा दु रसो ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं रसं जिणा बेंति॥३९५॥
फासो ण हवदि णाणं जम्हा फासो ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा बेंति॥३९६॥
कम्मं णाणं ण हवदि जम्हा कम्मं ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं कम्मं जिणा बेंति॥३९७॥
धम्मो णाणं ण हवदि जम्हा धम्मो ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं धम्मं जिणा बेंति॥३९८॥
णाणमधम्मो ण हवदि जम्हाघम्मो ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा बेंति॥३९९॥
कालो णाणं ण हवदि जम्हा कालो ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं कालं जिणा बेंति॥४००॥
आयासं णाणं ण हवदि जम्हायासं ण याणदे किंचि।
तम्हायासं अण्णं अण्णं णाणं जिणा बेंति॥४०१॥
णज्झवसाणं णाणं अज्झवसाणं अचेदणं जम्हा।
तम्हा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं॥४०२॥
जम्हा जाणदि णिच्चं तम्हा जीवो दु जाणगो णाणी।
णाणं च झाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं॥४०३॥
णाणं समम्मादिट्ठिं दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं।
धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवंति बुहा॥४०४॥

शास्त्रं ज्ञानं न भवति यतः शास्त्रं न जानाति किञ्चित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यत् शास्त्रं जिना वदन्ति॥३९०॥
शब्दो ज्ञानं न भवति यतः शब्दो न जानाति किञ्चित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यः शब्दो जिना वदन्ति॥३९१॥
रूपं ज्ञानं न भवति यतः रूपं न जानाति किञ्चित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यद्रूपं जिना वदन्ति॥३९२॥
वर्णो ज्ञानं न भवति यतः वर्णो न जानाति किञ्चित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं वर्णं जिना वदन्ति॥३९३॥
गन्धो ज्ञानं न भवति यतः गन्धो न जानाति किञ्चित्।

तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं गन्धं जिना वदन्ति॥३९४॥
रसः न भवति ज्ञानं यतः रसः न जानाति किञ्चित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं रसं जिना वदन्ति॥३९५॥
स्पर्शो न भवति ज्ञानं यतः स्पर्शो न जानाति किञ्चित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं स्पर्शं जिना वदन्ति॥३९६॥
कर्म ज्ञानं न भवति यतः कर्म न जानाति किञ्चित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं कर्म जिना वदन्ति॥३९७॥
धर्मो ज्ञानं न भवति यतः धर्मो न जानाति किञ्चित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं धर्मं जिना वदन्ति॥३९८॥
अधर्मो ज्ञानं न भवति यतः अधर्मो न जानाति किञ्चित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं अधर्मं जिना वदन्ति॥३९९॥
कालो ज्ञानं न भवति यतः कालो न जानाति किञ्चित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं कालं जिना वदन्ति॥४००॥
आकाशो ज्ञानं न भवति यतः आकाशं न जानाति किञ्चित्।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं आकाशं जिना वदन्ति॥४०१॥
अध्यवसानं ज्ञानं न भवति यतः अध्यवसानं अचेतनं।
तस्मादन्यज्ज्ञानमन्यं अध्यवसानं जिना वदन्ति॥४०२॥
यतः ज्ञाति नित्यं तस्मात् जीवः ज्ञायकः ज्ञानी।
ज्ञानं च ज्ञायकात् अव्यतिरिक्तं ज्ञेयम्॥४०३॥
ज्ञानं सम्यग्दृष्टिं च संयमं सूत्रमङ्गपूर्वकम्।
धर्माधर्मं च तथा प्रव्रज्यां अभ्युपगच्छन्ति बुधाः॥४०४॥

शास्त्र कुछ जाने नहीं, नहीं शास्त्र है ज्ञान।
शास्त्र अन्य ज्ञान अन्य है, जिन का कहना जान॥१०.८३.३९०॥
शब्द नहीं कुछ जानता, नहीं शब्द है ज्ञान।
शब्द अन्य ज्ञानान्य है, जिन का कहना जान॥१०.८४.३९१॥
रूप भी कुछ जाने नहीं, रूप नहीं है ज्ञान।
रूप अन्य ज्ञानान्य है, जिन का कहना जान॥१०.८५.३९२॥
वर्ण भी कुछ जाने नहीं, वर्ण नहीं है ज्ञान।
वर्ण अन्य ज्ञान अन्य है, जिन का कहना जान॥१०.८६.३९३॥
गंध भी कुछ जाने नहीं, गंध नहीं है ज्ञान।
गंध अन्य ज्ञान अन्य है, जिन का कहना जान॥१०.८७.३९४॥
रस भी कुछ जाने नहीं, रस में ना है ज्ञान।
रस अन्य है ज्ञान अन्य है, जिन का कहना जान॥१०.८८.३९५॥
स्पर्श कुछ जाने नहीं, स्पर्श नहीं है ज्ञान।
स्पर्श अन्य ज्ञान अन्य है, जिन का कहना जान॥१०.८९.३९६॥
कर्म भी कुछ जाने नहीं, कर्म नहीं है ज्ञान।
कर्म अन्य ज्ञान अन्य है, जिन का कहना जान॥१०.९०.३९७॥
धर्म कुछ जाने नहीं, धर्म नहीं है ज्ञान।
धर्म अन्य ज्ञान अन्य है, जिन का कहना जान॥१०.९१.३९८॥
अधर्म कुछ जाने नहीं, ना अधर्म है ज्ञान।

अधर्म अन्य ज्ञान अन्य है, जिन का कहना जान॥१०.९२.३९९॥
काल कुछ जाने नहीं, काल नहीं है ज्ञान।
काल अन्य ज्ञान अन्य है, जिन का कहना जान॥१०.९३.४००॥
आकाश ना जानता, न अकाश है ज्ञान।
ज्ञानान्य आकाश अन्य , जिन का कहना जान॥१०.९४.४०१॥
अध्यवसान जाने नहीं, अध्यवसान न ज्ञान।
अध्यवसान अन्य अन्य है, जिन का कहना जान॥१०.९५.४०२॥
जीव निरन्तर जानता, ज्ञायक ही है ज्ञान।
ज्ञानी ज्ञान अभिन्न है, जिन का कहना जान॥१०.९६.४०३॥
अंगसूत्र सम्यक्त्व, संयम, बुद्ध जन माने ज्ञान।
पुण्य पाप भी ज्ञान है, दिक्षा ज्ञान ही मान॥१०.९७.४०४॥

शास्त्र ज्ञान नहीं है क्योंकि वह कुछ जानता नहीं, इसलिए जिनों ने कहा—शास्त्र और ज्ञान अलग हैं।
शब्द, रूप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, धर्म, अधर्म, काल, आकाश, कर्म, अध्यवसाय आदि सभी जड़ हैं, कुछ नहीं जानते— इसलिए वे ज्ञान नहीं हैं।
ज्ञान आत्मा में है जो नित्य जानता है—इसलिए आत्मा ही ज्ञानी है, ज्ञायक है। ज्ञायक और ज्ञान में भेद नहीं है—यह समझना चाहिए।
बुद्ध पुरुष उसी ज्ञान को सम्यग्दृष्टि, संयम, सूत्र, धर्म-अधर्म और दीक्षा का साधन मानते हैं।

Scripture is not knowledge, because it does not *know* anything — therefore, the enlightened ones have said: scripture and knowledge are distinct.
Words, forms, colors, smells, tastes, touch, merit (dharma), demerit (adharma), time, space, karma, mental activity (adhyavasāya), and so on — all these are non-conscious (inert); they do not know anything — therefore, they are not knowledge.
Knowledge resides in the soul, which eternally knows — therefore, the soul alone is the knower, the perceiver.
There is no distinction between the knower and knowledge — this should be understood.
The enlightened regard this knowledge itself as the means to right faith (samyag-dṛṣṭi), restraint (saṁyama), spiritual teachings (sūtra), merit/demerit (dharma-adharma), and initiation (dīkṣā).

अत्ता जस्सामुत्तो ण हु सो आहारगो हवदि एवं।
आहारो खलु मुत्तो जम्हा सो पोग्गलमओ दु॥४०५॥
ण वि सक्कदि घेत्तुं जं ण विमोत्तुं जं च जं परदव्वं।
सो को वि य तस्स गुणो पाउगिओ विस्ससो वा वि॥४०६॥
तम्हा दु जो विसुद्धो चेदा सो णेव गेण्हदे किंचि।
णेव विमुंचदि किंचि वि जीवाजीवाण दव्वाणं॥४०७॥

अत्ता यस्यामुक्तः न स आहारग्रहणकर्ता भवति एवं।
आहारः खलु मुक्तः यतः सः पुद्गलमयः तु॥४०५॥
न च शक्नोति ग्रहीतुं यं न विमोक्तुं यं च यं परद्रव्यं।
सः कः अपि तस्य गुणः प्राप्यते विश्वासः अपि वा॥४०६॥
तस्मात् यः विशुद्धः चेतनः सः न एव गृह्णाति किञ्चित्।
न एव विमुञ्चति किञ्चित् अपि जीवाजीवयोः द्रव्ययोः॥४०७॥

जो आत्मा अमूर्तिक है, आहारक ना जान।
आहार तो मूर्त है, पुद्गल उसको मान॥१०.९८.४०५॥
ना ग्रहण ना छूटता, परद्रव्य स्वभाव।
पर द्रव्य का मेल नहीं, एकमेक नहीं भाव॥१०.९९.४०६॥
जीव हो या अजीव हो, शुद्ध आत्मा ना राग।
ग्रहण भी करता नहीं, ना ही करता त्याग॥१०.१००.४०७॥

जो आत्मा अमूर्तिक है, वह वास्तव में आहारक नहीं है; क्योंकि आहार तो मूर्त होता है, वह पुद्गलमय है।
जो परद्रव्य है, वह न तो ग्रहण किया जा सकता है और न ही छोड़ा जा सकता है—यही उसका स्वभाव या विभाव रूप गुण है।
इसलिए जो विशुद्ध आत्मा है, वह जीव या अजीव किसी भी द्रव्य को न तो ग्रहण करता है और न ही त्याग करता है।

The soul, being formless, is truly not an assimilator (not a taker of matter); for assimilation (food etc.) is material and has form—it is pudgala (matter). A foreign substance cannot truly be taken nor abandoned—this is its inherent or extrinsic nature.
Therefore, the pure soul neither accepts nor abandons anything, whether living or non-living substance.

पासंडीलिंगाणि व गिहिलिंगाणि व बहुप्पयाराणि।
घेत्तुं वंदति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गो त्ति॥४०८॥
ण दु होदि मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा।
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेवंति॥४०९॥

पाषण्डिलिङ्गानि वा गृहिलिङ्गानि वा बहुप्रकाराणि।
गृहीत्वा वदन्ति मूढा लिङ्गमिदं मोक्षमार्ग इति॥४०८॥
न तु भवति मोक्षमार्गो लिङ्गं यद्देहनिर्ममा अर्हन्तः।
लिङ्गं मुञ्चित्वा दर्शनज्ञानचारित्राणि सेवन्ते॥४०९॥

लिंग मुनि या गृहस्थ हो, लिंग गृहण बहु बार।
बाह्य लिंग पथ मोक्ष ना, यह अज्ञानी पुकार॥१०.१०१.४०८॥
बाह्य लिंग पथ मुक्ति ना,दैहिक निर्मम मान।
त्याग लिंग अर्हंत करे, दर्शन चरित्र ज्ञान॥१०.१०२.४०९॥

बहुत से मूर्ख लोग पाषंडी या गृहस्थ जैसे अनेक प्रकार के लिंगों को ग्रहण कर कहते हैं – "यही मोक्षमार्ग है।"
परंतु वास्तव में लिंग (बाह्य रूप) मोक्ष का मार्ग नहीं है। अर्हंत, जो देह से निर्मम होते हैं, वे लिंग को छोड़कर केवल दर्शन, ज्ञान और चारित्र का सेवन करते हैं।

Fools adopt various outward forms—ascetic or householder—and declare, "This is the path to liberation."
But external form is not the path to liberation. The Arhats, free from attachment to the body, renounce the form and pursue only right vision, knowledge, and conduct.

ण वि एस मोक्खमग्गो पासंडीगिहिमयाणि लिंगाणि।
दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा बेंति॥४१०॥

नाप्येष मोक्षमार्गः पाषण्डिगृहिमयानि लिङ्गानि।
दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गं जिना ब्रुवन्ति॥४१०॥

लिंग मुनि या गृहस्थ हो, मोक्षमार्ग मत मान।
दर्शन ज्ञान चरित्र ही, जिन मत पथ यह जान॥१०.१०३.४१०॥

मुनियों और गृहस्थों के लिंग (बाह्य चिह्न) मोक्षमार्ग नहीं हैं; दर्शन, ज्ञान और चारित्र को ही जिनेन्द्रदेव मोक्षमार्ग कहते हैं।

The external forms of ascetics or householders are not the path to liberation; Right vision, knowledge, and conduct alone are declared as the path by the Jinas.

तम्हा जहित्तु लिंगे सागारणगारएहिं वा गहिदे।
दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे॥४११॥

तस्मात् जहित्वा लिङ्गानि सागारैरनगारकैर्वा गृहीतानि।
दर्शनज्ञानचारित्रे आत्मानं युंक्ष्व मोक्षपथे॥४११॥

गृहस्थ या मुनिजन रहे, ग्रहण लिंग का त्याग।
दर्शन ज्ञान चरित्र में, आत्मा का हो राग॥१०.१०४.४११॥

इसलिए चाहे गृहस्थों द्वारा धारण किए लिंग हों या मुनियों द्वारा—उन्हें त्याग कर दर्शन, ज्ञान और चारित्र—जो कि मोक्ष का मार्ग हैं—में आत्मा को लगाओ।

Therefore, renounce the external marks taken by householders or monks,
And engage your soul in right vision, knowledge, and conduct—the path to liberation.

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि तं चेव झाहि तं चेय।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वेसु॥४१२॥

मोक्षपथे आत्मानं स्थापय तं चैव ध्यायस्व तं चेतयस्व।
तत्रैव विहर नित्यं मा विहार्षीरन्यद्रव्येषु॥४१२॥

स्थित कर मोक्ष मार्ग में, कर आत्मा का ध्यान।
केवल आत्म विहार में, नहीं अन्य कही ज्ञान॥१०.१०५.४१२॥

स्थित कर मोक्ष मार्ग में, कर आत्मा का ध्यान।
विहार केवल आत्म में, अन्य कही न हो ज्ञान॥१०.१०५.४१२॥

Establish your soul on the path of liberation—meditate on it, realize it,
Dwell always in that alone, and do not wander among other substances.

पासंडीलिंगेसु व गिहिलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममत्तिं तेहिं ण णादं समयसारं॥४१३॥

पाषण्डिलिङ्गेषु या गृहिलिङ्गेषु या बहुप्रकारेषु।
कुर्वन्ति ये ममत्वं तैर्न ज्ञातः समयसारः॥४१३॥

लिंग मुनि या गृहस्थजन, लिंग ग्रहण बहु बार।
ममता जिसकी लिंग में, समयसार ना धार॥१०.१०६.४१३॥

जो मुनिलिंग या गृहस्थलिंग में, चाहे जितने प्रकार के क्यों न हो, ममता करता है—उसने समयसार को नहीं जाना।

Those who cling with attachment to ascetic or householder forms, in any of their many types, They have not understood the essence of *Samayasara*.

ववहारिओ पुण णओ दोण्णि वि लिंगाणि भणदि मोक्खपहे।
णिच्छयणओ ण इच्छदि मोक्खपहे सव्वलिंगाणि॥४१४॥

व्यवहारिणस्तु नयः द्वे अपि लिङ्गे भणाति मोक्षप्रपथे।
निश्चयनयः न इच्छति मोक्षपथे सर्वलिङ्गानि॥४१४॥

श्रमण या श्रावक रहे, मोक्षमार्ग व्यवहार।
मोक्षमार्ग में लिंग नहीं, निश्चयनय का विचार॥१०.१०७.४१४॥

व्यवहारनय श्रमण और श्रावक दोनों लिंगों को मोक्षमार्ग मानता है, परंतु निश्चयनय किसी भी प्रकार के लिंग को मोक्षमार्ग नहीं मानता।

The Vyavahāra-naya (conventional view) considers both ascetic and lay forms as part of the path to liberation,
But the Nishchaya-naya (absolute view) accepts no form at all as the path to liberation.

जो समयपाहुडमिणं पढिदूणं अत्थतच्चदो णादुं।
अत्थे ठाही चेदा सो होही उत्तमं सोक्खं॥४१५॥

यः समयप्राभृतमिदं पठित्वा अर्थतत्त्वतो ज्ञात्वा।
अर्थे स्थास्यति चेतयिता स भविष्यत्युत्तमं सौख्यम्॥४१५॥

समयसार जो भव्य पढे, अर्थ तत्त्व का ज्ञान।
स्थित हो चेतन अर्थ में, परमआनन्द का भान॥१०.१०८.४१५॥

जो व्यक्ति 'समयसार' जैसे ग्रंथ को पढ़कर उसके अर्थ और तत्त्व को भली-भाँति जानकर, उस अर्थ में स्थित (स्थिर) रहेगा — वह चेतन (सजग) जीव परम उत्तम सुख को प्राप्त करेगा।

The one who, after studying a scripture like the 'Samayasara', understands its meaning and essence thoroughly, and remains established in that meaning — that conscious (aware) soul will attain the highest supreme bliss.

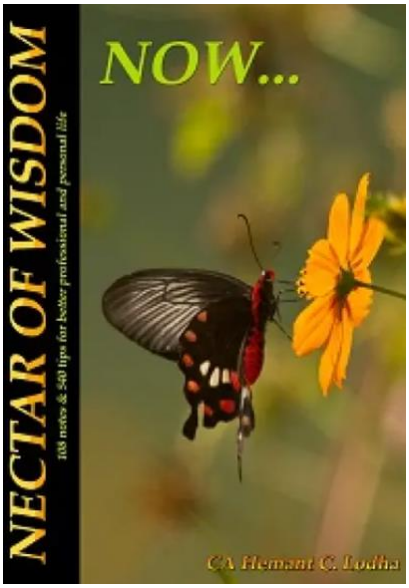
NECTAR OF WISDOM
NOW...
CA Hemant C. Lodha

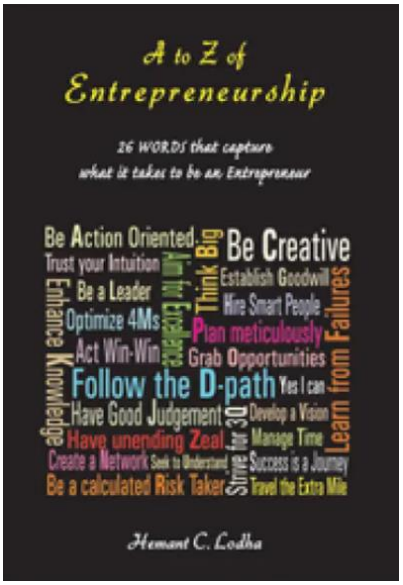
A to Z of
Entrepreneurship
26 WORDS that capture
what it takes to be an Entrepreneur
Be Action Oriented
Trust your Intuition
Be a Leader
Optimize 4Ms
Act Win-Win
Follow the D-path
Have Good Judgement
Have unending Zeal
Create a Network
Be a calculated Risk Taker
Be Creative
Establish Goodwill
Hire Smart People
Plan meticulously
Grab Opportunities
Yes I can
Develop a Vision
Manage Time
Success is a Journey
Travel the Extra Mile
Learn from Failures
Hemant C. Lodha

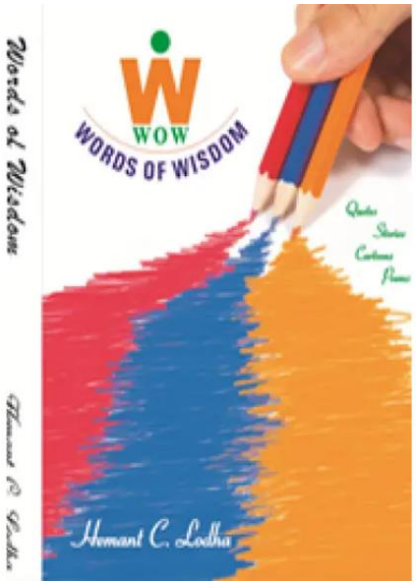
Words of Wisdom
WOW
WORDS OF WISDOM
Hemant C. Lodha

अष्टावक्र महागीता
रूप-कविता
संकल्पना व लेखन
• हेमंत सी. लोढ़ा
संशोधन
• अविनाश वागड़े

श्रीमद्भगवद्गीता
रूप-कविता
संकल्पना व लेखन
• हेमंत लोढ़ा
सहयोग
• अविनाश वागड़े

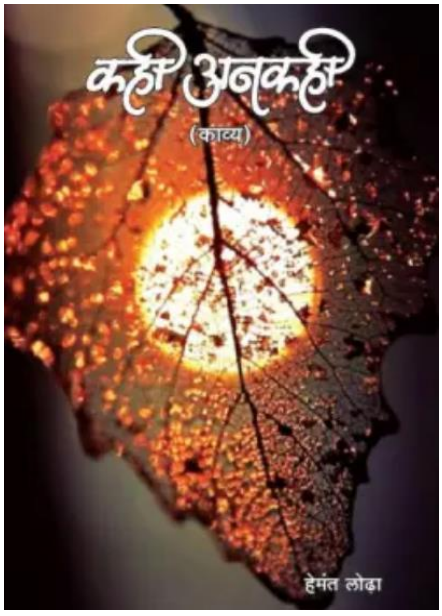
कहे अनकहे
(काव्य)
हेमंत लोढ़ा

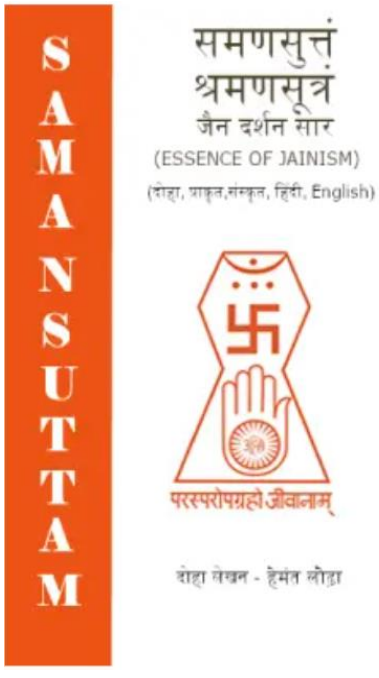
SAMANSUTTAM
समणसुत्तं
श्रमणसूत्र
जैन दर्शन सार
(ESSENCE OF JAINISM)
(दोहा, प्राकृत,संस्कृत, हिंदी, English)
परस्परोपग्रहो जीवानाम्
दोहा लेखन - हेमंत लोढ़ा

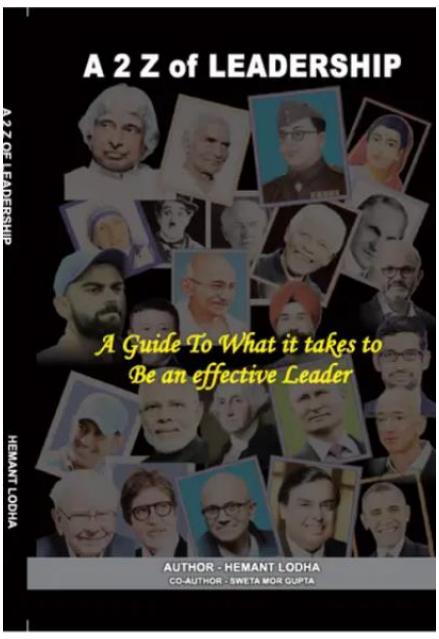
A 2 Z of LEADERSHIP
A Guide To What it takes to
Be an effective Leader
HEMANT LODHA
AUTHOR - HEMANT LODHA
CO-AUTHOR - SWETA MOR GUPTA

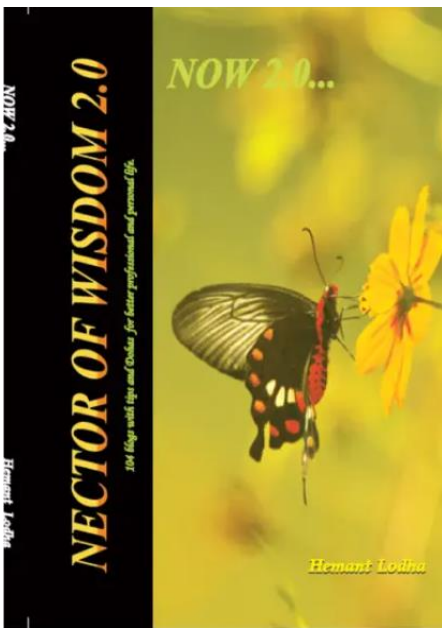
NECTOR OF WISDOM 2.0
NOW 2.0...
Hemant Lodha

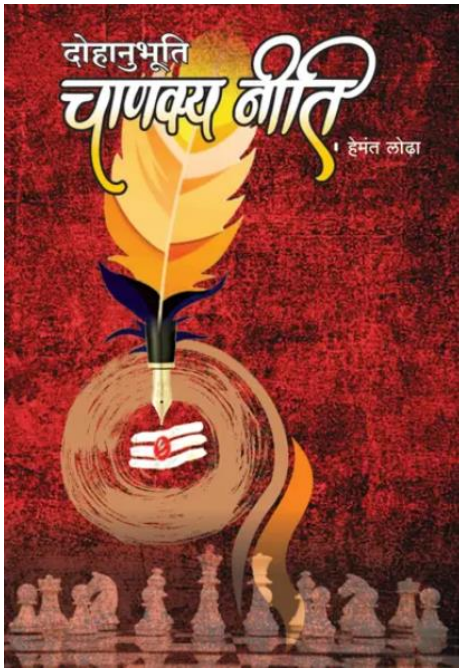
दोहानुभूति
चाणक्य नीति
हेमंत लोढ़ा

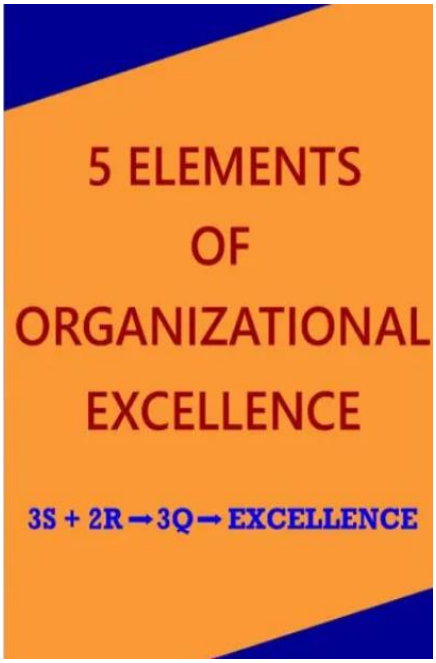
5 ELEMENTS
OF
ORGANIZATIONAL
EXCELLENCE
3S + 2R → 3Q → EXCELLENCE

RATNAKARAND SHRAVAKACHAR
आचार्य समन्तभद्र स्वामी विरचित
रत्नकरण्ड श्रावकाचार
(संस्कृत, दोहा, हिंदी, इंग्लिश)
महिमा
दोहा लेखन
जैन हेमन्त लोढ़ा

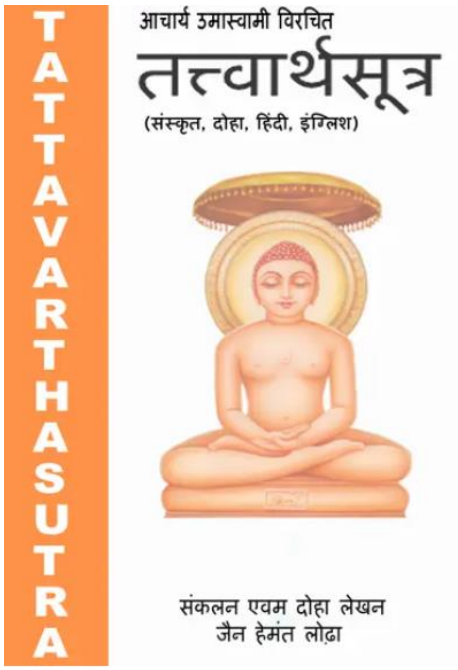
TATTVARTHASUTRA
आचार्य उमास्वामी विरचित
तत्त्वार्थसूत्र
(संस्कृत, दोहा, हिंदी, इंग्लिश)
संकलन एवम दोहा लेखन
जैन हेमंत लोढ़ा

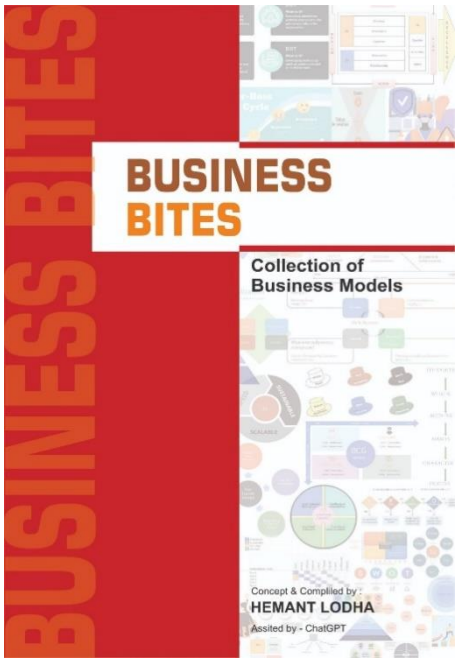
BUSINESS BITES
BUSINESS
BITES
Collection of
Business Models
Concept & Compiled by :
HEMANT LODHA
Assited by - ChatGPT

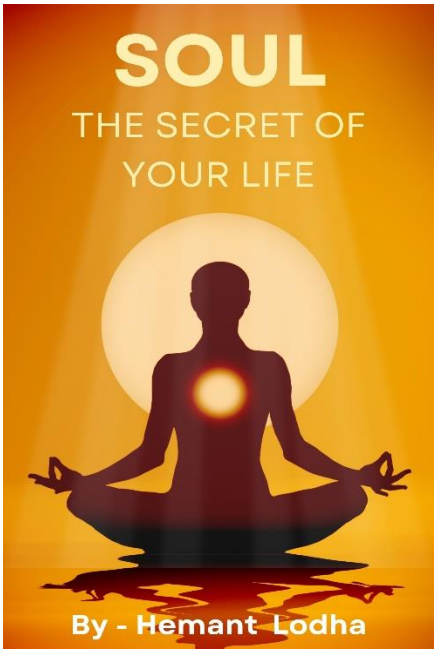
SOUL
THE SECRET OF
YOUR LIFE
By - Hemant Lodha

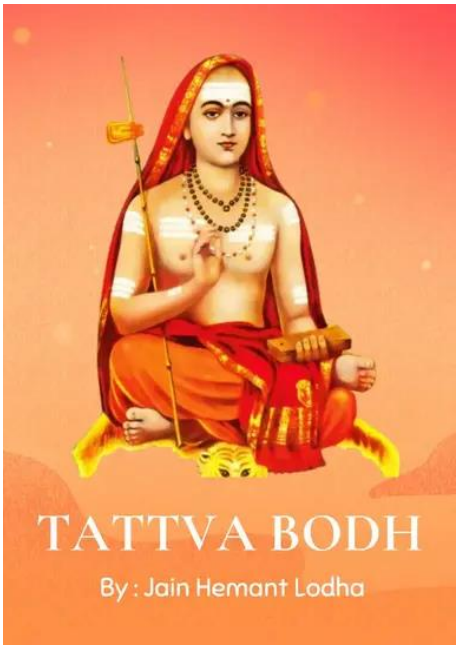
TATTVA BODH
By : Jain Hemant Lodha

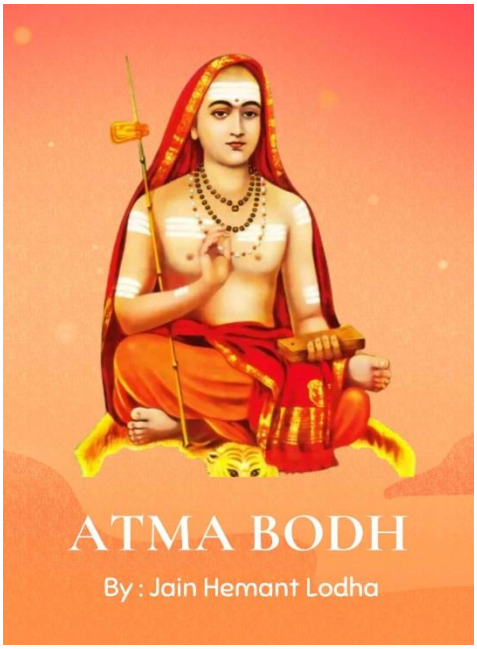
ATMA BODH
By : Jain Hemant Lodha

CA Hemant Lodha (Jain)

Mr. Hemant Lodha, a chartered accountant by profession is an avid reader whose literary interests include philosophy, spirituality, relationship building, leadership skills & management skills. Born in Jodhpur, to a respected family of limited means, he has been all over the globe before settling in Nagpur in 2002.

He has authored many books such as 'Words of Wisdom', 'Nectar of Wisdom', 'Shrimad Bhagwat Geeta Roopkavita', 'Ashtavakra Mahageeta Roopkavita', 'Kahi Ankahi', 'Samansuttam', 'Chankya Niti' 'A to Z Entrepreneurship' 'A to Z of Leadership' etc.

Being socially active, he is associated with several organizations and has founded "Helplink Charitable Trust" with a motto to LINK THE NOBLE AND THE NEEDY, mainly working in the field of education for deprived children.

He is presently working as a Director of SMS Limited.

He can be easily reached at www.hemantlodha.com